प्यारे नबी (सल्ल०)
की
पाक बीवियाँ
(उम्महातुल-मोमिनीन)

तालिब हाशिमी
तर्जमा
नुज़हत यासमीन

विषय-सूची

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा महरबान, निहायत रहमवाला है।)

दो शब्द

यह किताब 'प्यारे नबी (सल्ल०) की पाक बीवियाँ' जो आपके हाथों में है, अस्ल में मशहूर इतिहासकार जनाब तालिब हाशिमी की किताब 'तज़कारे-सहाबियात' का एक अध्याय है। किताब 'तज़कारे-सहाबियात' में सहाबी औरतों यानी उन ख़ुशनसीब मुस्लिम औरतों के क़िस्से और ज़िन्दगी के हालात बयान किए गए हैं, जिन्होंने पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को देखा और इस्लाम की शिक्षाओं पर चलकर अपने को इस्लाम का अमली नमूना साबित किया और साथ ही इस्लाम के फैलाने और प्रचार-प्रसार में अपनी हैसियतभर पूरा सहयोग किया। यह पूरी किताब 'तज़कारे-सहाबियात' अस्ल में उर्दू में लिखी गई थी और उर्दू पाठकों में बहुत लोकप्रिय हुई। इस पुस्तक की अहमियत को देखते हुए इसका हिन्दी में भी अनुवाद कराया जा चुका है। उसमें से प्यारे नबी की पाक बीवियों के हालात अलग किताब की शक्ल में प्रकाशित किए गए हैं। अगर अल्लाह ने चाहा तो बाक़ी हिस्सा निकट भविष्य में प्रकाशित हो जाएगा।

जैसा कि हम सब जानते हैं कि पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ख़ास तौर पर जहाँ मर्दों के लिए एक बेहतरीन नमूना हैं, वहीं आपकी पाक बीवियाँ भी ख़ास तौर पर औरतों के लिए बेहतरीन नमूना हैं। अल्लाह ने जहाँ आप (सल्ल०) को अख़्लाक़ और किरदार के बुलन्द मक़ाम पर पहुँचाया था वहीं आपकी बीवियों को भी अख़्लाक़ व किरदार का बुलन्दतरीन मक़ाम अता किया था। यही वजह है कि

ईमानवाली हर औरत नबी (सल्ल०) की बीवियों के पदचिह्नों पर चलना अपनी सफलता और ख़ुशक़िस्मती समझती है।

'इस्लामी साहित्य ट्रस्ट' हिन्दी में विशुद्ध इस्लामी लिट्रेचर तैयार करने और अवाम तक इस्लामी साहित्य पहुँचाने में लगा हुआ है। यह पुस्तक भी इसी कोशिश का एक नतीजा है। इस पुस्तक को पेश करते हुए बड़ी ख़ुशी हो रही है।

इस पुस्तक की भाषा अत्यन्त सहज, सरल और आम फ़हम रखने का पूरा प्रयास किया गया है और साथ ही प्रूफ़ आदि की दृष्टि से कोई त्रुटि न रहने पाए इसकी भी पूरी कोशिश की गई है। इसके बावुजूद अगर किसी पाठक को कोई ग़लती मिलती है, तो हमें उससे आगाह करें, हम आपके अभारी होंगे।

अल्लाह से दुआ है कि इस पुस्तक में वर्णित आदर्शों पर चलने और अमल करने की हम आप सबको तौफ़ीक़ अता करे। (आमीन)

— नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
सेक्रेट्री
इस्लामी सहित्य ट्रस्ट (दिल्ली)

हज़रत ख़दीजतुल-कुबरा (रज़ि०)

नाम :- ख़दीजा

कुन्नियत :- उम्मे-हिन्द

लक़ब :- ताहिरा

नसब-नामा :- ख़दीजा-बिन्ते-खुवैलिद-बिन-असद-बिन-अब्दुल-उज़्ज़ा-बेन-क़ुसय्य (क़ुसय्य नबी सल्ल० के पूर्वज थे।)

माँ का नाम फ़ातिमा-बिन्ते-ज़ाइदा था, वे आमिर-बिन-लुई के ख़ानदान ा थीं।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के बाप खुवैलिद-बिन-असद एक कामयाब यापारी थे। वे न सिर्फ़ अपने क़बीले में बड़ी इज़्ज़त और एहतिराम से देखे ाते थे, बल्कि अपने अच्छे व्यवहार और ईमानदारी की वजह से पूरे क़ुरैश क़बीले में बहुत ही लोकप्रिय और मोहतरम थे।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) "आमुल-फ़ील' (वह साल जिसमें हाथियों की ाटना हुई) से पन्द्रह साल पहले, सन 555 ई. में पैदा हुईं। वे बचपन से ही ाहुत नेक और शरीफ़ थीं। जब बड़ी हुईं तो उनकी शादी अबू-हाला हेन्द-बिन-बनाश तमीमी से हुई। अबू-हाला से इनके दो लड़के हुए। एक ा नाम हाला था जो जाहिलीयत के ज़माने में ही चल बसा। दूसरे बेटे का ाम हिन्द था। कुछ रिवायतों के मुताबिक़ वे सहाबी थे, यानी उनको इस्लाम क़बूल करने और मुहम्मद (सल्ल०) से मुलाक़ात करने का मौक़ा मेला।

अबू-हाला के इन्तिक़ाल के बाद हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की दूसरी शादी अतीक़-बिन-आबिद मख़्ज़ूमी नाम के एक आदमी से हुई। उनसे एक लड़की पैदा हुई, जिसका नाम हिन्द था। कुछ मुद्दत के बाद अतीक़-बिन-आबिद का भी इन्तिक़ाल हो गया। एक रिवायत के मुताबिक़ हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की तीसरी शादी उनके चचेरे भाई सैफ़ी-बिन-उमय्या से हुई और उनके इन्तिक़ाल के बाद ख़ुशक़िस्मती से हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की शादी नबी (सल्ल०) के साथ हुई। लेकिन कुछ दूसरी रिवायतों में है कि हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की तीसरी शादी नबी (सल्ल०) ही से हुई।

नबी (सल्ल०) के साथ शादी से पहले हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) अपनी बेवगी (विधवा-काल) के दिन एकान्त में गुज़ार रही थीं। वे अपना कुछ वक़्त काबा में गुज़ारतीं और कुछ वक़्त उस ज़माने की बा-इज़्ज़त क़ाहिन औरतों में बितातीं और कभी-कभी ज़माने के इंक़िलाब पर बात-चीत करतीं। क़ुरैश के बड़े-बड़े सरदारों ने उन्हें शादी के पैग़ाम भेजे लेकिन उन्होंने सबको ठुकरा दिया, क्योंकि एक के बाद एक पहुँचने वाले सदमों ने उनका मन दुनिया से उचाट कर दिया था।

उधर उनके बाप बुढ़ापे और कमज़ोरी की वजह से अपने बड़े और फैले हुए कारोबार की देखभाल से आजिज़ आ गए थे। कोई बेटा भी नहीं था। वे अपना सारा कारोबार अपनी अक़्लमन्द और समझदार बेटी के हवाले करके ख़ुद गोशानशीन (एकान्तप्रिय) हो गए। कुछ समय बाद उनका इन्तिक़ाल हो गया।[1]

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने पूरे कारोबार को बहुत ही अच्छे ढंग से चलाया। उस वक़्त उनका कारोबार एक तरफ़ शाम (सीरिया) तो दूसरी

---

[1] कुछ रिवायतों में है कि हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के बाप ख़ुवैलिद-बिन-असद फ़िजार नामक लड़ाई में मारे गए थे और उनके चचा अम्र-बिन-असद उनके सरपरस्त थे। बहरहाल, यह बात यक़ीनी है कि नबी (सल्ल०) से शादी के वक़्त ख़ुवैलिद ज़िन्दा नहीं थे और अम्र-बिन-असद ही हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के सरपरस्त और वली थे।

तरफ़ यमन के आस-पास के इलाक़ों में फैला हुआ था। उस बड़े और फैले हुए कारोबार को चलाने के लिए उन्होंने बहुत से लोगों को काम पर लगा रखा था। इन लोगों में यहूदी और ईसाई मुलाज़िम और ग़ुलाम शामिल थे। बेहतरीन तदबीरों और ईमानदारी की वजह से उनका कारोबार दिन-दूनी, रात चौगुनी तरक़्क़ी कर रहा था। अब उनको एक ऐसे शख़्स की तलाश थी जो बेहद क़ाबिल, समझदार और ईमानदार हो, ताकि वे अपने तमाम मुलाज़िमों और कर्मचारियों को उसकी निगरानी में तिजारती क़ाफ़िलों के साथ बाहर भेज सकें।

उस ज़माने में नबी (सल्ल०) के पाकीज़ा अख़लाक़ और किरदार की चरचा मक्का के घर-घर में फैल चुकी थी। उस वक़्त आप (सल्ल०) नौजवान थे और आप (सल्ल०) सारी क़ौम में 'अमीन' (अमानतदार) के लक़ब से याद किए जाते थे। यह नामुमकिन था कि हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के कानों में भी उस पाकीज़ा हस्ती की ख़ूबियों की भनक न पड़ती। उनको अपने कारोबार की देख-भाल के लिए ऐसी ही उम्दा ख़ूबियोंवाले शख़्स की तलाश थी। उन्होंने आप (सल्ल०) को पैग़ाम भेजा कि अगर आप मेरे कारोबार का सामान शाम (सीरिया) ले जाया करें तो मैं आपको दूसरों से दो गुना मुआवज़ा दूँगी।

नबी (सल्ल०) उन दिनों अपने चचा अबू-तालिब की सरपरस्ती में थे। उन्हें कभी-कभी हज़रत ख़दीजा के कारोबार की ख़बर मिलती रहती थी। आप (सल्ल०) ने हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की दरख़्वास्त मंज़ूर कर ली और व्यापार का सामान लेकर बसरा की तरफ़ चल पड़े। हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने अपने ख़ास ग़ुलाम को जिसका नाम मैसरा था, नबी (सल्ल०) के साथ भेजा और उसे यह ताकीद की कि सफ़र में आप (सल्ल०) को कोई तकलीफ़ न होने पाए।

नबी (सल्ल०) की ईमानदारी और हुनरमंदी की वजह से सारा सामान दोगुने लाभ पर बिक गया। सफ़र के दौरान क़ाफ़िले के सरदार, यानी

मुहम्मद (सल्ल०) ने अपने क़ाफ़िले के साथियों के साथ इतना अच्छा सुलूक किया कि सभी आपके प्रशंसक और जाँनिसार बन गए। जब क़ाफ़िला मक्का वापस आया और मैसरा ने हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) को सफ़र के हालात बताए और कारोबार में होनेवाले नफ़े की तफ़सीलात बताईं तो वे बहुत प्रभावित हुईं, और अपनी कनीज़ (दासी) नफ़ीसा के ज़रीए से नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में निकाह का पैग़ाम भेजा। नबी (सल्ल०) की इजाज़त पाकर वे हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के चचा अम्र-बिन-असद को बुला लाईं। उस वक़्त वही उनके सरपरस्त थे।

दूसरी तरफ़ से नबी (सल्ल०) अपने चचा अबू-तालिब और ख़ानदान के दूसरे लोगों के साथ हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के मकान पर तशरीफ़ लाए। हज़रत अबू-तालिब ने निकाह का ख़ुत्बा पढ़ा। उस वक़्त नबी (सल्ल०) की उम्र पच्चीस साल और हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की उम्र चालीस (40) साल थी।

निकाह के बाद नबी (सल्ल०) अकसर बाहर रहने लगे। कई-कई दिन मक्का के पहाड़ों में जाकर इबादत्त करते रहते। इस तरह दस (10) साल गुज़र गए। एक दिन इसी तरह आप (सल्ल०) एक पहाड़ की 'हिरा' नामक गुफ़ा में अकेले इबादत में लीन थे, तभी अल्लाह के हुक्म से जिबरील (अलैहि०) (पैग़म्बरों के पास अल्लाह के पैग़ाम पहुँचाने वाले फ़रिश्ते) आप के पास तशरीफ़ लाए और कहा, "क़ुम या मुहम्मद" (ऐ मुहम्मद, खड़े हो जाइए)। नबी (सल्ल०) ने नज़रें उठाईं तो अपने सामने एक नूरानी चेहरेवाले को खड़ा पाया जिसके माथे पर नूर से कलिमा तय्यिबा लिखा हुआ था। जिब्रील (अलैहि०) ने नबी (सल्ल०) को गले लगाकर दबाया और कहा, "पढ़ो"। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ। जिब्रील (अलैहि०) ने फिर यही कहा और नबी (सल्ल०) ने यही जवाब दिया। तीसरी बार जब जिब्रील (अलैहि०) ने कहा,

"पढ़ो अपने परवरदिगार के नाम से जिसने सब कुछ पैदा किया, इनसान को ख़ून के एक लोथड़े से बनाया। पढ़ो, और तुम्हारा परवरदिगार बहुत करीम है जिसने क़लम के ज़रीए से इल्म सिखाया, इनसान को वह इल्म दिया जिसे वह नहीं जानता था।"

(अल-अलक़-1-5)

तो नबी (सल्ल०) की मुबारक ज़बान पर ये कलिमे जारी हो गए।

इस अनोखी घटना का नबी (सल्ल०) पर बहुत असर पड़ा। घर तशरीफ़ लाए और फ़रमाया, "मुझको कपड़ा उढ़ाओ, मुझको कपड़ा उढ़ाओ।" हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने आपको चादर उढ़ाई और पूछा कि आप कहाँ थे? मैं बहुत परेशान थी और कई लोगों को मैं आपकी तलाश में भेज चुकी थी। नबी (सल्ल०) ने सारी घटना ख़दीजा (रज़ि०) को सुनाई। हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने तसल्ली दी और फ़रमाया कि "आप (सल्ल०) सच बोलते हैं, ग़रीबों के मददगार हैं, मेहमानों का सत्कार करते हैं, रिश्तेदारों से अच्छा सुलूक करते हैं, दुखियों की देख-भाल करते हैं, अमानत अदा करते हैं, अल्लाह आपको अकेला नहीं छोड़ेगा।

फिर आप (सल्ल०) को साथ लेकर अपने चचेरे भाई वरक़ा-बिन-नौफ़ल के पास गईं, जिन्होंने जाहिलीयत के ज़माने में बुतपरस्ती छोड़ दी थी और ईसाई हो गए थे। वे पिछली आसमानी किताबें तौरात, ज़बूर और इंजील के बड़े आलिम (विद्वान) थे। बीबी ख़दीजा (रज़ि०) ने सारी घटना जो नबी (सल्ल०) पर बीती थी, उनके सामने बयान की। वरक़ा यह सुनते ही बोल उठे,

"यह वही फ़रिश्ता है जो मूसा (अलैहि०) पर उतरा था। ऐ काश कि मैं उस ज़माने तक ज़िन्दा रहता जब कि आपकी क़ौम आपको वतन से निकाल देगी!"

नबी (सल्ल०) ने पूछा, "क्या ये लोग मुझे निकाल देंगे?" वरक़ा ने कहा, "जो कुछ आप पर उतरा है, वह जब किसी पर उतारा जाता है तो

दुनिया उसकी दुश्मन बन जाती है, अगर मैं उस वक़्त तक ज़िन्दा रहा तो आपकी पूरी मदद करूँगा।" इस बात-चीत के बाद वरक़ा का बहुत जल्द इन्तिक़ाल हो गया। हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) को पूरा यक़ीन हो गया था कि आप (सल्ल०) को अल्लाह ने अपना रसूल बना लिया है। इसलिए वे बिना किसी झिझक के नबी (सल्ल०) पर ईमान ले आईं। सीरत की सभी किताबें इस बात पर एकमत हैं कि औरतों में सबसे पहले ईमान लानेवाली ख़ुशनसीब ख़ातून हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ही हैं।

नबी (सल्ल०) से निकाह के बाद हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) लगभग पच्चीस साल (नुबूव्वत के नौ साल बाद तक) ज़िन्दा रहीं। उस पूरे ज़माने में उन्होंने नबी (सल्ल०) के साथ हर तरह की परेशानियों और मुसीबतों को सहज भाव से झेला और नबी (सल्ल०) की जीवन साथी होने का हक़ अदा किया।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के इस्लाम लाने के बाद नबी (सल्ल०) के रिश्तेदारों में भी इस्लाम की तड़प पैदा हुई। नौजवानों में हज़रत अली (रज़ि०), बड़ों में हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) और हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि०) सबसे पहले ईमान लाए। उनके बाद दूसरे अच्छे लोग भी धीरे-धीरे इस्लाम क़बूल करने लगे। हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) इस्लाम को फलता-फूलता देख कर बहुत ख़ुश होतीं और वे अपने ग़ैर-मुस्लिम रिश्तेदारों की कड़वी-कसेली बातों की परवाह किए बग़ैर नबी (सल्ल०) का हक़ को फैलाने में साथ दे रही थीं। उन्होंने अपनी सारी दौलत इस्लाम पर न्योछावर की दी। अब उनकी सारी दौलत यतीमों और विधवाओं की देख-भाल, ग़रीबों की मदद, बे-सहारा लोगों को सहारा देने और ज़रूरतमन्द की ज़रूरत पूरी करने के लिए थी। उधर क़ुरैश मुसलमानों पर तरह-तरह के ज़ुल्म ढा रहे थे और इस्लाम की राह में तरह-तरह के रोड़े अटका रहे थे। उन्होंने नबी (सल्ल०) और आपके प्यारे साथियों को सताने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी।

जब नबी (सल्ल०) काफ़िरों की फ़ुज़ूल और बेहूदा बातों से दुखी होते तो हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) कहतीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप दुखी न हों, भला ऐसा कोई रसूल आज तक आया है जिसकी लोगों ने हंसी न उड़ाई हो!" हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की बातों से नबी (सल्ल०) की उदासी दूर हो जाती। यानी उस मुश्किल वक्त में हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) न सिर्फ़ नबी (सल्ल०) की हम-ख़याल और हमदर्द थीं, बल्कि हर मौक़े पर और मुसीबत में आप (सल्ल०) की मदद के लिए तैयार रहती थीं। नबी (सल्ल०) फ़रमाया करते थे,

> "मैं जब काफ़िरों से कोई बात सुनता था और वह मुझे बुरी लगती थी तो मैं ख़दीजा (रज़ि०) से कहता। वे इस तरह तसल्ली देती थीं कि मेरे मन को शान्ति मिल जाती थी और सारे ग़म ख़दीजा की बातों से हल्के हो जाते थे।"

अफ़ीफ़ किन्दी ने बयान किया है कि जाहिलीयत के ज़माने में मैं कुछ सामान ख़रीदने मक्का आया और अब्बास-बिन-अब्दुल-मुत्तलिब के पास ठहरा। दूसरे दिन सुबह के वक्त अब्बास (रज़ि०) के साथ बाज़ार गया। जब काबा के पास से गुज़रा तो मैंने देखा कि एक नौजवान आया। उसने सिर आसमान की तरफ़ उठाकर देखा, फिर क़िबले की तरफ़ मुँह करके खड़ा हो गया। थोड़ी देर बाद एक नौउम्र लड़का आया और नौजवान के एक तरफ़ खड़ा हो गया। कुछ देर बाद एक औरत आई और वह उन दोनों के पीछे खड़ी हो गई। उन तीनों ने नमाज़ पढ़ी और चले गए। मैंने अब्बास (रज़ि०) से कहा, "अब्बास ऐसा मालूम होता है कि मक्क़ा में इनक़िलाब आनेवाला है।" अब्बास (रज़ि०) ने कहा, "हाँ, तुम जानते हो ये तीनों कौन हैं?" मैंने कहा, "नहीं।" अब्बास (रज़ि०) ने कहा, "यह नौजवान और यह लड़का दोनों मेरे भतीजे थे। नौजवान अब्दुल्लाह-बिन-अब्दुल-मुत्तलिब का बेटा मुहम्मद और लड़का अबू-तालिब-बिन-अब्दुल-मुत्तलिब का बेटा अली था। और वह औरत जिसने दोनों के पीछे नमाज़ पढ़ी, मेरे भतीजे

मुहम्मद की बीवी ख़दीजा-बिन्ते-ख़ुवैलिद है। मेरे भतीजे का दावा है कि दीन (धर्म) आसमानी है और वह हर काम अल्लाह के हुक्म से करता है। लेकिन अभी तक इन दोनों के सिवा इस दीन को माननेवाला कोई और मेरे इल्म में नहीं है।" अब्बास की ये बातें सुनकर मेरे दिल में यह तमन्ना जागी कि ऐ काश! चौथा मैं होता।

इस घटना से अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि कैसे मुश्किल हालात में हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) का साथ दिया। हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की यही हमदर्दी और जाँनिसारी थी कि नबी (सल्ल०) उनसे बहुत मुहब्बत करते थे। जब तक वे ज़िन्दा रहीं, नबी (सल्ल०) ने कोई दूसरा निकाह नहीं किया। हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) जहाँ औलाद की परवरिश बेहतर तरीक़े से कर रही थीं वहीं घरेलू ज़िम्मेदारियाँ भी बड़े सलीक़े से निबाह रही थीं धन-दौलत के बावुजूद नबी (सल्ल०) की ख़िदमत ख़ुद करती थीं हदीस की किताब सहीह बुख़ारी में रिवायत है कि एक बार हज़रत जिब्रील (अलैहि०) नबी (सल्ल०) के पास आए और कहा, "ख़दीजा बरतन में कुछ ला रही हैं, आप उनको अल्लाह का और मेरा सलाम पहुँचा दीजिए।"

नबी (सल्ल०) से हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की मुहब्बत और अक़ीदत का यह हाल था कि नुबूवत से पहले और नुबूवत के बाद आप (सल्ल०) ने जो कुछ फ़रमाया, उन्होंने हमेशा उसको सच जाना और उसका समर्थन किया। इसलिए नबी (सल्ल०) हमेशा आपकी तारीफ़ किया करते थे।

नुबूवत के सात सालों के बाद जब क़ुरैश के मुश्रिकों ने बनू-हाशिम और बनू-मुत्तलिब को अबू-तालिब नामक घाटी में क़ैद किया, तो हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) भी इस मुसीबत में नबी (सल्ल०) के साथ थीं। वे पूरे तीन सालों तक इस क़ैद में दुख और तक्लीफ़ की मुसीबतो को बड़े सब्र और हौसले से झेलती रहीं।

नुबूवत के दसवें साल में यह ज़ालिमाना घेराबन्दी ख़त्म हुई, लेकिन इसके बाद हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) ज़्यादा दिनों तक ज़िन्दा न रहीं। रमज़ान के मुबारक महीने में (या इससे कुछ पहले) वे बीमार पड़ीं। नबी (सल्ल०) ने इलाज और देख-भाल में कोई कसर नहीं छोड़ी, लेकिन मौत का कोई इलाज नहीं। ग्यारह रमज़ान दस नब्वी में उनका इन्तिक़ाल हो गया। मक्का के क़ब्रिस्तान हुजून में दफ़न की गईं। उस वक़्त उनकी उम्र लग-भग पैंसठ (65) साल थी।

नबी (सल्ल०) को हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का बहुत सदमा हुआ। आप (सल्ल०) अकसर उदास रहने लगे, फिर हज़रत सौदा (रज़ि०) से आप का निकाह हुआ। हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के बाद भी आप (सल्ल०) को उनसे इतनी मुहब्बत थी कि जब कोई क़ुरबानी करते तो पहले ख़दीजा (रज़ि०) की सहेलियों को गोश्त भेजते, बाद में किसी और को देते। हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) का कोई रिश्तेदार जब कभी आप (सल्ल०) के पास आता तो आप (सल्ल०) उनका बहुत आदर-सत्कार करते। ख़दीजा के इन्तिक़ाल के बाद बहुत दिनों तक नबी (सल्ल०) उस वक़्त तक घर के बाहर न जाते, जब तक हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की तारीफ़ न कर लेते। इसी तरह जब घर तशरीफ़ लाते तो उन्हें याद करते और उनकी तारीफ़ करते। हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं कि एक बार नबी (सल्ल०) ने इसी तरह ख़दीजा (रज़ि०) की तारीफ़ की, मुझे रश्क आया, मैंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! वे एक बूढ़ी और बेवा औरत थीं, अल्लाह ने उनके बाद आप (सल्ल०) को मुबारक बीवी दी है।" यह सुनकर नबी (सल्ल०) का मुबारक चेहरा ग़ुस्से से लाल हो गया, आप (सल्ल०) ने फ़रमाया—

> "ख़ुदा की क़सम, मुझे ख़दीजा से अच्छी बीवी नहीं मिली, वे ईमान लाईं जब सब लोग काफ़िर थे। उसने मुझे सच्चा माना, जब सबने मुझे झुठलाया, उसने सारी दौलत मुझपर क़ुरबान कर

दी जब दूसरों ने मुझे महरूम (वंचित) रखा और अल्लाह ने उस की कोख से मुझे औलाद दी।"

हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं कि मैं डर गई और उस दिन से यह फ़ैसला कर लिया कि कभी हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) को ऐसा-वैसा न कहूँगी।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) से अल्लाह ने नबी (सल्ल०) को छः लड़के, लड़कियाँ दीं। सबसे पहले क़ासिम पैदा हुए जो बचपन में ही इन्तिक़ाल कर गए। फिर ज़ैनब (रज़ि०), उनके बाद अब्दुल्लाह, (उनका लक़ब तैय्यिब और ताहिर था) उनका इन्तिक़ाल भी कमसिनी में हो गया, फिर रूक़य्या (रज़ि०), फिर उम्मे-कुलसूम (रज़ि०), फिंर फ़ातिमा (रज़ि०) पैदा हुईं।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) की तारीफ़ में बहुत-सी हदीसें रिवायत की गई हैं।

हज़रत सौदा-बिन्ते-ज़मआ (रज़ि०)

नाम :- सौदा, आप क़ुरैश के क़बिले आमिर-बिन-लुय्य से थीं।

नसब-नामा :- सौदा-बिन्ते-ज़मआ-बिन-क़ैस-बिन-अब्दे-शम्स-बिन-अब्दूद-बिन-नस्र-बिन-मालिक-बिन-हसल-बिन-आमिर-लुय्य।

माँ का नाम :- समूस-बिन्ते-क़ैस था। वे अंसार के ख़ानदान बनू-ज्जार से थीं।

हज़रत सौदा (रज़ि०) का पहला निकाह उनके चचेरे भाई हज़रत किरान- बिन-अम्र (रज़ि०) से हुआ।

हज़रत सौदह (रज़ि०) नेक और शरीफ़ थीं। जब नबी (सल्ल०) ने ोगों को इस्लाम की तरफ़ बुलाना शुरू किया तो इन्होंने बढ़कर उसे क़बूल र लिया। इनके नेक शौहर ने भी इनके साथ ही इस्लाम क़बूल किया। बशा की तरफ़ होनेवाली दूसरी हिजरत में हज़रत सौदा (रज़ि०) और ज़रत सकरान (रज़ि०) भी दूसरे मुसलमानों के साथ हबशा चले गए। वे कई ाल वहाँ रहकर मक्का लौटे। यहाँ कुछ दिनों के बाद हज़रत सकरान (रज़ि०) ा इन्तिक़ाल हो गया और हज़रत सौदा (रज़ि०) बेवा हो गईं।

इसी ज़माने में हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हुआ था। बिन ँ की बच्चियों को देखकर नबी (सल्ल०) उदास रहते थे। नबी (सल्ल०) ो एक जाँनिसार सहाबिया हज़रत ख़ौला-बिन्त-हकीम (रज़ि०) ने एक दिन ाप (सल्ल०) से कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! ख़दीजा (रज़ि०) के न्तिक़ाल के बाद मैं हमेशा आपको ग़मगीन देखती हूँ।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हाँ, घर का इन्तिज़ाम और बच्चों की ख़-भाल ख़दीजा ही के सुपुर्द थी।"

ख़ौला (रज़ि०) ने कहा, "तो फिर आपको एक हमदर्द जीवन-साथी क ज़रूरत है। अगर इजाज़त दें तो मैं आपके निकाह के लिए बात करूँ।"

नबी (सल्ल०) ने इजाज़त दे दी। ख़ौला (रज़ि०) सौदा (रज़ि०) के पा नबी (सल्ल०) का पैग़ाम लेकर गईं। हज़रत सौदा बड़ी ख़ुशी से इस रि पर रज़ामन्द हो गईं। उनके बाप ज़मआ ने भी नबी (सल्ल०) का पैग़ क़बूल कर लिया और अपनी प्यारी बेटी का निकाह खुद नबी (सल्ल०) चार सौ दिरहम पर पढ़ाया। निकाह के बाद उनके बेटे अब्दुल्लाह घर आ उन्होंने अभी तक इस्लाम नहीं क़बूल किया था। इस निकाह की ख़ सुनकर वे बहुत दुखी हुए और उन्होंने अपने सर पर मिट्टी डाली। इस्ल क़बूल करने के बाद सारी उम्र अपनी इस ग़लती पर पछताते रहे। य मुबारक निकाह सन 10 नब्वी में रमज़ान के महीने में हुआ।

ज़रक़ानी (रह०) ने बयान किया है कि अपने पहले शौहर सकरान (रज़ि की ज़िन्दगी में एक बार हज़रत सौदा (रज़ि०) ने ख़्वाब देखा कि वे तकि के सहारे लेटी हैं कि आसमान फटा और चाँद उनपर गिर पड़ा। उन्होंने य ख़्वाब हज़रत सकरान (रज़ि०) से बयान किया तो वे बोले, "इस ख़्वाब ताबीर यह मालूम होती है कि जल्द मेरा इन्तिक़ाल हो जाएगा और अरब चाँद मुहम्मद (सल्ल०) से तुम्हारा निकाह होगा।" वाक़ई इस ख़्वाब ताबीर कुछ ही दिनों के बाद पूरी हो गई।

कुछ रिवायतों के मुताबिक़ हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल बाद नबी (सल्ल०) का दूसरा निकाह हज़रत सौदा (रज़ि०) से हुआ अ कुछ के मुताबिक़ हज़रत आइशा (रज़ि०) से। सन 13 नब्वी में नबी (सल्ल हिजरत करके मदीना तशरीफ़ ले गए और वहीं से हज़रत अबू-राफ़े (रज़ि और ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि०) को मक्का भेजा ताकि वे हज़ फ़ातिमा (रज़ि०), हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) और हज़रत सौदा (रज़ि वग़ैरा को साथ लेकर आएँ। इस तरह वे सब ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि०) अबू-राफ़े (रज़ि०) के साथ मक्का से मदीना आईं।

परदे की आयत नाज़िल होने के पहले हज़रत सौदा (रज़ि०) अपनी ज़रूरतों के लिए बाहर तशरीफ़ ले जाती थीं। हज़रत उमर (रज़ि०) का ख़याल था कि नबी (सल्ल०) की पाक बीवियों को बाहर न निकलना चाहिए। वे एक बार नबी (सल्ल०) से यह दरख़ास्त कर भी चुके थे लेकिन नबी (सल्ल०) चुप रहे। एक दिन हज़रत सौदा (रज़ि०) अपनी ज़रूरत से जा रही थीं कि रास्ते में उमर (रज़ि०) मिल गए। हज़रत सौदा (रज़ि०) लम्बे क़द की थीं। हज़रत उमर (रज़ि०) ने उन्हें पहचान लिया और बोले, "सौदा, हमने तुम्हें पहचान लिया।" हज़रत सौदा (रज़ि०) को हज़रत उमर (रज़ि०) की यह बात बहुत बुरी लगी और उन्होंने नबी (सल्ल०) से हज़रत उमर (रज़ि०) की शिकायत की। बुख़ारी की रिवायत में है कि इस घटना के बाद परदे की आयत नाज़िल हुई और तमाम औरतें परदे की पाबन्द हो गईं।

हज़रत सौदा (रज़ि०) कुछ तेज़ मिज़ाज की थीं, लेकिन वे हँसती-हँसाती भी रहती थीं। कभी-कभी नबी (सल्ल०) भी उनकी बातों से आनन्दित हो उठते थे। इब्ने-साद (रह०) बयान करते हैं कि कभी-कभी वे जान-बूझकर बेढंगेपन से चलती थीं। नबी (सल्ल०) देखते तो हँस पड़ते। एक रात उन्होंने नबी (सल्ल०) के साथ नमाज़ पढ़ी। नबी (सल्ल०) देर तक "रुकूअ' में रहे। सुबह हुई तो कहने लगीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! रात में आपने इतनी देर तक रुकूअ किया कि मुझे अपनी नकसीर फूटने का ख़तरा हो गया। इसलिए मैं बड़ी देर तक अपनी नाक सहलाती रही।" नबी (सल्ल०) उनकी बात सुनकर मुस्कुराने लगे।

हज़रत सौदा (रज़ि०) बहुत रहम-दिल थीं। जो कुछ पातीं खुले दिल से ज़रूरतमन्दों और ग़रीबों में बाँट देतीं। हाफ़िज़ इब्ने हजर (रह०) ने अपनी किताब 'इसाबा' में लिखा है कि हज़रत सौदा (रज़ि०) दस्तकार (हुनरवाली) थीं। वे ताइफ़ की खालें बनाया करती थीं। उससे जो आमदनी होती उसे अल्लाह की राह में ख़र्च कर देती थीं।

एक बार हज़रत उमर फ़ारुक़ (रज़ि०) ने उन्हें दिरहमों की एक थैल तोहफ़े में भेजी। उन्होंने पूछा, "इसमें क्या है?" लोगों ने कहा, "दिरहम।' बोलीं, "थैली में खजूरों की तरह?" यह कहकर सारे दिरहम ग़रीबों में इस तरह बाँट दिए जिस तरह खजूरें बाँटी जाती हैं।

हज़रत सौदा (रज़ि०) की उम्र ज़्यादा हो चुकी थी, और हज़रत आइशा (रज़ि० नौउम्र थीं, इसलिए उन्होंने अपनी बारी का दिन हज़रत आइशा (रज़ि०) क दे दिया जो उन्होंने ख़ुशी से क़बूल कर लिया।

हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं, "हज़रत सौदा (रज़ि०) म औरतोंवाली ईर्ष्या भावना बिल्कुल नहीं थी।"

हज़रत सौदा (रज़ि०) का अख़लाक़ इतना पाकीज़ा था कि एक बा हज़रत आइशा (रज़ि०) ने फ़रमाया, "सौदा के अलावा किसी दूसरी और को देखकर मेरे दिल में यह तमन्ना नहीं जागी कि इसके जिस्म में मेरी जा होती।"

हज़रत सौदा (रज़ि०) ने सन 10 हिजरी में नबी (सल्ल०) के साथ ह किया चूँकि आप लम्बे क़द और भारी जिस्म की थीं, इसलिए तेज़ नहीं च सकती थीं। नबी (सल्ल०) ने उन्हें मुज़दल्फ़ा से रवानगी से पहले चले जा की इजाज़त दे दी, ताकि उन्हें भीड़-भाड़ से तकलीफ़ न हो।

हिज्जतुल-विदाअ (नबी (सल्ल०) का आख़री हज) के मौक़े पर नबी (सल्ल ने अपनी तमाम पाक बीवियों (रज़ि०) से फ़रमाया, "इस हज के बाद अप घरों में बैठना।"

हज़रत सौदा (रज़ि०) और हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-जहश (रज़ि०) ने इ हुक्म का बड़ी सख़्ती से पालन किया। नबी (सल्ल०) की दूसरी पा बीवियाँ (रज़ि०) इस हुक्म को हज पर लागू नहीं समझती थीं। लेकिन हज़ सौदा (रज़ि०) और हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल बाद सारी उम्र घर से बाहर नहीं निकलीं। हज़रत सौदा (रज़ि०) फ़रमा

करती थीं, "मैं हज और उमरा दोनों कर चुकी हूँ। अब अल्लाह के हुक्म के मुताबिक़ घर से बाहर नहीं निकलूँगी।"

हज़रत सौदा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हज़रत उमर (रज़ि०) के ज़माने में सन् 22 हिजरी में हुआ।

हज़रत सकरान (रज़ि०) से उनके एक बेटे थे। उनका नाम अब्दुर्रहमान (रज़ि०) था। वे हज़रत उमर (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में जलूला की लड़ाई में शरीक हुए और बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए अल्लाह की राह में शहीद हो गए। नबी (सल्ल०) से हज़रत सौदा (रज़ि०) की कोई औलाद नहीं हुई।

हज़रत सौदह (रज़ि०) से पाँच हदीसें रिवायत की गई हैं। उनमें से एक सहीह बुख़ारी में और चार सुनने-अरबआ में हैं।

हज़रत आइशा सिद्दीक़ा (रज़ि०)

नाम :- आइशा

कुन्नियत :- उम्मे-अब्दुल्लाह।

लक़ब :- सिद्दीक़ा और हुमैरा

आप क़ुरैश के ख़ानदान बनू-तीम से थीं।

नसब-नामा :- आइशा-बिन्ते-अबू-बक्र सिद्दीक़-बिन-अबू-क़हाफ़ा-बिन आमिर-बिन-अम्र-बिन-कअब-बिन-तैम-बिन-मुर्रा-बिन-कअब-बिन-लुइय।

माँ का नाम उम्मे-रूमान-बिन्ते-आमिर था और वे भी बड़े ऊँचे मर्तबे की सहाबिया थीं।

हज़रत आइशा (रज़ि०) का बचपन हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) जैसे बुलन्द मर्तबेवाले बाप के साए में गुज़रा। वे बचपन से ही बहुत तेज़ और अक्लमन्द थीं। अपने बचपन की सारी बातें उन्हें याद थीं, कहा जाता है कि किसी सहाबी या सहाबिया की याददाश्त इतनी अच्छी न थी।

बचपन में एक बार हज़रत आइशा (रज़ि०) गुड़ियों से खेल रही थीं तभी नबी (सल्ल०) पास से गुज़रे। नन्हीं आइशा के खिलौनों में एक घोड़ा भी था जिसके पर थे। नबी (सल्ल०) ने पूछा, "आइशा, यह क्या है?" जवाब दिया, घोड़ा है।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "घोड़ों के तो पर नहीं होते।" उन्होंने तुरन्त जवाब दिया, "क्यों ऐ अल्लाह के रसूल! हज़रत सुलैमान (अलैहि०) के घोड़ों के तो पर थे।" नबी (सल्ल०) यह जवाब सुनकर मुस्कुरा उठे।

इमाम बुख़ारी (रह०) का बयान है कि जब सूरा क़मर की यह आयत "बल्कि इनसे निमटने के लिए अस्ल वादे का वक़्त तो क़ियामत है और व

हुत बड़ी आफ़त और बहुत कड़वी घड़ी है।" (सूरा अल-क़मर, 46) मक्का नाज़िल हुईं तो उस वक्त हज़रत आइशा (रज़ि०) खेल रही थीं।

हज़रत आइशा (रज़ि०) का रिश्ता नबी (सल्ल०) से पहले ज़ुबैर-बिन-तइम के बेटे से हुआ था। मगर ज़ुबैर ने यह रिश्ता अपनी माँ के इशारे पर ोड़ दिया क्योंकि हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) और उनके घरवाले मुसलमान ा चुके थे। इसके बाद हज़रत ख़ौला-बिन्ते-हकीम (रज़ि०) की दरख़ास्त पर बी (सल्ल०) ने हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) को हज़रत आइशा (रज़ि०) के लए पैग़ाम दिया। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के मुँहबोले भाई ।। उन्होंने हैरत से पूछा, "क्या भाई की बेटी से निकाह हो सकता है?" ज़रत ख़ौला (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से यह सवाल पूछा तो आप (सल्ल०) ने रमाया, "अबू-बक्र मेरे दीनी भाई हैं और ऐसे भाइयों की औलाद से नकाह जाइज़ है।" हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) के लिए इससे बढ़कर ख़ुशी ी बात और क्या हो सकती थी कि उनकी बेटी नबी (सल्ल०) के निकाह आए। वे इसके लिए तुरन्त तैयार हो गए। हिजरत से तीन साल पहले व्वाल के महीने में हज़रत आइशा (रज़ि०) का निकाह नबी (सल्ल०) से आ। अबू-बक्र (रज़ि०) ने ख़ुद निकाह पढ़ाया। महर पाँच सौ दिरहम रखा या।

एक बार अरब में, शव्वाल के महीने में ताऊन (Plague) की ख़तरनाक ीमारी फैली थी, जिसने हज़ारों घरों को उजाड़ दिया था। उस वक्त से व्वाल का महीना अरबों में मनहूस (अशुभ) समझा जाता था और वे इस हीने में ख़ुशी के समारोह नहीं करते थे। हज़रत आइशा (रज़ि०) का नकाह शव्वाल के महीने में हुआ और विदाई भी शव्वाल के महीने में हुई। फ़र लोगों के दिल से शव्वाल महीने के अशुभ और मनहूस होने का ख़याल नकल गया।

नबी (सल्ल०) को ख़्वाब में हज़रत आइशा (रज़ि०) से निकाह की ़ुशख़बरी मिल चुकी थी। आप (सल्ल०) ने ख़्वाब में देखा कि कोई शख़्स

रेशम में लिपटी हुई कोई चीज़ आपको दिखा रहा है और कहता है, "र आप की है।" आपने खोला तो हज़रत आइशा (रज़ि०) थीं।

हज़रत आइशा (रज़ि०) पैदाइशी मुसलमान थीं। आइशा (रज़ि फ़रमाती हैं कि जब मैंने अपने माँ-बाप को पहचाना, उन्हें मुसलमान पाय इससे ज़ाहिर है कि हज़रत आइशा (रज़ि०) पर कुफ़्र और शिर्क का सा तक न पड़ा था।

हज़रत आइशा (रज़ि०) से निकाह के तीन साल बाद नबी (सल्ल हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) के साथ हिजरत फ़रमाकर मदीना तशरीफ़ ले गए मदीना पहुँचकर नबी (सल्ल०) और हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने अप घरवालों को मक्का से मदीना लाने के लिए हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि अबू-राफ़े (रज़ि०) और अब्दुल्लाह-बिन-अरीक़त को भेजा। वापसी हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि०) के साथ हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०), हज़ उम्मे-कुलसूम (रज़ि०), हज़रत सौदा-बिन्ते-ज़मआ (रज़ि०), उम्मे-ऐमन (रज़ि और उसामा-बिन-ज़ैद (रज़ि०) थे और अब्दुल्लाह-बिन-अरीक़त के स अब्दुल्लाह-बिन-अबू-बक्र (रज़ि०), उम्मे-रूमाना (रज़ि०), आइशा (रज़ि और अस्मा-बिन्ते-अबू बक्र (रज़ि०) थीं।

मदीना पहुँचकर हज़रत आइशा (रज़ि०) मुहल्ला बनू-हारिसा में अप बाप के घर उतरीं। मदीने का मौसम शुरू में मुहाजिरों के अनुकूल नहीं थ हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) मदीना पहुँचकर बहुत बीमार हो गए। हज़ आइशा (रज़ि०) ने उनकी देख-भाल में कोई कसर न छोड़ी। जब तन्दुरुस्त हुए तो ख़ुद बीमार पड़ गईं। बीमारी की सख़्ती से सिर के ब गिर गए लेकिन जान बच गई। जब सेहतमन्द हुईं तो हज़रत अबू-बक्र (रज़ि ने नबी (सल्ल०) से दरख़ास्त की, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप आइशा रुख़्सत क्यों नहीं करा लेते।" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अभी मेरे प महर नहीं है।" हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने आप (सल्ल०) की ख़िदमत पाँच सौ दिरहम क़र्ज़े-हसन के रूप में पेश किए, जिसे आप (सल्ल०)

क़बूल फ़रमा लिया। फिर वहीं दिरहम हज़रत आइशा (रज़ि०) के पास भेजकर सन् 1 हिजरी, शव्वाल के महीने में उन्हें रुख़्सत करा लिया।

सन् 3 हिजरी में उहुद की लड़ाई हुई। जब एक छोटी-सी ग़लती की वजह से लड़ाई का पाँसा पलट गया और नबी (सल्ल०) की शहादत की अफ़वा फैल गई, तो मदीने से हज़रत आईशा (रज़ि०), हज़रत सफ़िया (रज़ि०), हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) और दूसरी सहाबियात बेचैन होकर लपकती हुई लड़ाई के मैदान की तरफ़ आईं। वहाँ पहुँचकर नबी (सल्ल०) को सलामत पाया तो अल्लाह का शुक्र अदा किया। उन्होंने नबी (सल्ल०) के ज़ख़्मों को धोया, फिर मशकीज़े संभाले और ज़ख़्मियों को पानी पिलाना शुरू किया। नबी (सल्ल०) के दूसरे सहाबी, जो इधर-उधर बिखर गए थे, आप (सल्ल०) के पास जमा होने लगे तो ये सहाबियात मदीना वापस तशरीफ़ लाईं।

इमाम अहमद-बिन-हम्बल (रह०) ने बयान किया है कि हज़रत आइशा (रज़ि०) ख़न्दक़ की लड़ाई में भी क़िले से बाहर निकलकर लड़ाई का हाल देखा करती थीं। नबी (सल्ल०) से दूसरी लड़ाइयों में भी शरीक होने की इजाज़त माँगी लेकिन नहीं मिली। सहीह बुख़ारी में है कि वे रातों को उठकर क़ब्रिस्तान चली जाती थीं। इन रिवायतों से पता चलता है कि उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) स्वभाव से ही बहुत बहादुर और निडर थीं।

हज़रत आइशा (रज़ि०) की ज़िन्दगी में चार घटनाएँ बहुत अहमियत रखती हैं। इफ़्क, ईला, तहरीम और तख़यीर।

(1) इफ़्क की घटनाः बनू-मुस्तलिक़ की लड़ाई में हज़रत आइशा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के साथ थीं। रास्ते में क़ाफ़िले ने एक जगह पड़ाव डाला। हज़रत आइशा (रज़ि०) शौच के लिए पड़ाव से दूर चली गईं, वहाँ उनके गले का हार, जिसे वे अपनी बहन हज़रत अस्मा (रज़ि०) से माँगकर लाई थीं, गिर गया। लौटने पर उन्हें पता चला तो परेशान हो गईं और ढूँढने उसी रास्ते पर चल पड़ीं ताकि क़ाफ़िले के चलने से पहले हार ढूँढ कर

वापस आ जाएँ। जब हार ढूँढ कर वापस आईं तो क़ाफ़िला जा चुका था। कमसिन भी थीं, बहुत घबराईं और चादर ओढ़कर वहीं लेट गईं। हज़रत सफ़वान-बिन-मुअत्तल (रज़ि०) किसी इन्तिज़ामी ज़रूरत की वजह से क़ाफ़िले के साथ नहीं गए थे। उन्होंने हज़रत आइशा (रज़ि०) को पहचान लिया, क्योंकि बचपन में या परदे की आयत उतरने से पहले उन्हें देख चुके थे। उनसे पीछे रह जाने की वजह पूछी। जब पूरी बात मालूम हुई तो बड़ी हमदर्दी और एहतिराम से उम्मुल-मोमिनीन को ऊँट पर बिठाकर तेज़ी से क़ाफ़िले की ओर चल पड़े और दोपहर तक क़ाफ़िले से जा मिले। मशहूर मुनाफ़िक़ अब्दुल्लाह-बिन-उबई को जब यह घटना मालूम हुई तो उसने हज़रत आइशा (रज़ि०) पर लांछन लगाया और इसे ख़ूब हवा दी। कुछ सीधे-सादे मुसलमानों ने इस आरोप को सच मान लिया। नबी (सल्ल०) भी इन हालात से परेशान हो गए और हज़रत आइशा (रज़ि०) इस बेवजह बदनामी के दुख से बीमार पड़ गईं। उस वक़्त अल्लाह की ग़ैरत जोश में आई और आयते-बराअत (वह आयत जिसमें अल्लाह ने हज़रत आइशा (रज़ि०) के निर्दोष होने का एलान कर दिया) नाज़िल हुई।

> "जिस वक़्त तुम लोगों ने सुना था उसी वक़्त क्यों न ईमानवाले पुरुषों और ईमानवाली औरतों ने अपने आप से अच्छा गुमान किया और क्यों न कह दिया कि यह सरासर झूठा आरोप है।"
>
> (क़ुरआनः 24:12)

आयते-बराअत के नाज़िल होने से दुशमनों के चेहरे काले पड़ गए और सीधे-सादे मुसलमान जो झूठी अफ़वाह को सच मान बैठे थे, बड़े शर्मिंदा हुए। उन्होंने अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से सच्चे दिल से माफ़ी माँगी। हज़रत आइशा (रज़ि०) और उनके माँ-बाप ख़ुशी से खिल उठे। आइशा (रज़ि०) का सिर गर्व से ऊँचा हो गया। उन्होंने फ़रमाया, "मैं सिर्फ़ अपने अल्लाह की शुक्रगुज़ार हूँ, किसी और की एहसानमन्द नहीं।"

(2) तहरीम की घटनाः नबी (सल्ल०) का नियम था कि अस्र की नमाज़ के बाद अपनी पाक बीवियों के यहाँ थोड़ी देर के लिए तशरीफ़ ले जाते थे। एक बार हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-जहश (रज़ि०) के यहाँ आप देर तक रुके। हज़रत आइशा (रज़ि०) को रश्क हुआ। मालूम किया तो पता चला कि हज़रत ज़ैनब के यहाँ किसी ने तोहफ़े में शहद भेजा है, जिसे नबी (सल्ल०) ने खाया है। हज़रत आइशा (रज़ि०) ने हज़रत हफ्सा (रज़ि०) से कहा कि जब नबी (सल्ल०) तुम्हारे यहाँ तशरीफ़ लाएँ तो कहना कि ऐ अल्लाह के रसूल! क्या आपने मग़ाफ़ीर का शहद खाया है। (मग़ाफ़ीर एक फूल है जिसे शहद की मक्खी चूस्ती है। उसमें एक ख़ास तरह की बू होती है और प्यारे नबी को हर तरह की बू नापसंद थी।) जब नबी (सल्ल०) फ़रमाएँगे कि ज़ैनब (रज़ि०) ने शहद खिलाया है तो तुम कहना कि शायद यह शहद अरफ़त की मक्खी का है। जब नबी (सल्ल०) हज़रत हफ्सा (रज़ि०) के यहाँ तशरीफ़ लाए तो यही बातें हुईं फिर हज़रत सफ़िया (रज़ि०) और आइशा (रज़ि०) ने भी ऐसी ही बात कही तो नबी (सल्ल०) को उस शहद से नफ़रत-सी हो गई। चुनांचे जब आप (सल्ल०) फिर हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के पास तशरीफ़ ले गए और वे आप (सल्ल०) के लिए शहद लाईं तो आपने शहद खाने से इनकार कर दिया और फ़रमाया, "मुझे इसकी ज़रूरत नहीं है, मैं अब कभी शहद नहीं खाऊँगा।" इसपर यह आयत नाज़िल हुई—

> "ऐ नबी! तुम अपनी बीवियों की रज़ामन्दी के लिए जो चीज़ खुदा ने हलाल की है उसको अपने ऊपर क्यों हराम करते हो।"
>
> (क़ुरआन, 66-1)

(3) ईला की घटना : नबी (सल्ल०) की पाक बीवियों को अनाज और खजूर की जो मात्रा गुज़र-बसर के लिए मिली थी, वह बहुत कम थी और उनका गुज़ारा बड़ी मुशिकल से होता था। उधर ग़नीमत के माल और सालाना मालगुज़ारी में काफ़ी बढ़ोत्तरी हुई थी। इसलिए नबी (सल्ल०) की पाक बीवियाँ भी अपने निर्धारित गुज़ारे में बढ़ोत्तरी चाहती थीं। हज़रत

अबू-बक्र (रज़ि०) और हज़रत उमर (रज़ि०) ने अपनी बेटियों हज़रत आइशा (रज़ि०) और हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) को समझा-बुझा कर ऐसी माँग करने से रोक दिया। लेकिन दूसरी बीवियाँ अपनी माँग पर अड़ी रहीं। इत्तिफ़ाक़ से उसी ज़माने में नबी (सल्ल०) घोड़े से गिर पड़े और आपके पहलू में चोट लग गई। आप (सल्ल०) हज़रत आइशा (रज़ि०) के हुजरे के क़रीब छत पर बने हुए एक कमरे में ठहर गए और यह अहद (प्रतिज्ञा) किया कि एक महीने तक अपनी पाक बीवियों से नहीं मिलेंगे। मुनाफ़िक़ तो ऐसे ही मौक़े की तलाश में रहते थे। उन्होंने मशहूर कर दिया कि आप (सल्ल०) ने अपनी सभी पाक बीवियों को तलाक़ दे दी है। मुसलमान इस ख़बर को सुनकर बहुत रंजीदा हुए। हज़रत उमर (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए। आप (सल्ल०) एक खुर्री चारपाई पर लेटे थे। मुबारक जिस्म पर बान के निशान पड़ गए थे। नबी (सल्ल०) का यह हाल देखकर हज़रत उमर (रज़ि०) की आँखों में आँसू आ गए, पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या आपने अपनी बीवियों को तलाक़ दे दी है?" फ़रमाया, "नहीं।" हज़रत उमर (रज़ि०) ने यह खुशख़बरी तमाम लोगों को सुना दी। इस ख़बर से मुसलमानों और नबी (सल्ल०) की पाक बीवियों में खुशी की लहर दौड़ गई।

हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं, "मैं एक-एक दिन गिनती थी। उन्तीसवें दिन नबी (सल्ल०) छत के कमरे से उतर कर सबसे पहले मेरे पास तशरीफ़ लाए। मैं ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आपने एक महीने का अहद किया था और आज उन्तीस दिन हुए हैं।" फ़रमाया, "महीना कभी उन्तीस दिनों का भी होता है।

तख़ईर[1] की घटना : ईला की घटना के बाद एक दिन नबी (सल्ल०) हज़रत आइशा (रज़ि०) के पास तशरीफ़ लाए और फ़रमाया, "आईशा मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ इसका जवाब तुम अपने माँ-बाप से

[1] यानी दूसरे को किसी बात का अधिकार देना।

सलाह-मशविरा करके दो तो अच्छा होगा।" हज़रत आइशा (रज़ि०) ने पूछा, " ऐ अल्लाह के रसूल! वह बात किया है?"

नबी (सल्ल०) ने सूरा अहज़ाब की ये आयतें सुनाईं –

"ऐ नबी! अपनी बीवियों से कह दो, अगर तुम दुनिया की ज़िन्दगी और उसकी रौनक़ चाहती हो तो आओ मैं तुम्हें कुछ दे दिला कर भले तरीक़े से विदा कर दूँ। और अगर तुम्हें अल्लाह और उसके रसूल और आख़िरत का घर पसन्द है तो तुममें से जो नेक काम करनेवाली हैं अल्लाह ने उनके लिए बड़ा बदला तैयार कर रखा है।" (सूरा अहज़ाब : 28)

हज़रत आइशा (रज़ि०) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! इसमें माँ-बाप से सलाह-मशविरा करने की क्या ज़रूरत है? मैं तो अल्लाह, अल्लाह का रसूल और आख़िरत का घर इख़्तियार करती हूँ।"

नबी (सल्ल०) ने इस बात को पसन्द फ़रमाया। यही बात जब दूसरी बीवियों से पूछी तो उन्होंने भी ऐसा ही जवाब दिया।

नबी (सल्ल०) को हज़रत आइशा (रज़ि०) बहुत प्रिय थीं। मुसनद अबू-दाऊद में रिवायत है कि नबी (सल्ल०) फ़रमाया करते थे,

"ऐ अल्लाह, मैं अपनी सभी बीवियों से बराबर का सुलूक करता हूँ, मगर दिल मेरे वश में नहीं, उसे आइशा ज़्यादा पसन्द है, ऐ अल्लाह इसे माफ़ करना।"

नबी (सल्ल०) पाकी-सफ़ाई का बहुत ख़याल रखते थे और अपनी मिस्वाक बार-बार धुलवाया करते थे। इस काम की ज़िम्मेदारी हज़रत आइशा (रज़ि०) के ही सुपुर्द थी।

हज़रत आइशा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) पर जान छिड़कती थीं। एक रात हज़रत आइशा (रज़ि०) की आँख खुली तो आप (सल्ल०) को मौजूद न

पाकर बहुत परेशान हो गईं। बेक़रार होकर उठीं और अँधेरे में इधर-उध ढूँढने लगीं। फिर देखा कि नबी (सल्ल०) सजदे में गिरे, अल्लाह की याद मे मशग़ूल हैं, तब उन्हें इत्मिनान हुआ।

एक बार नबी (सल्ल०) कम्बल ओढ़कर मस्जिद में तशरीफ़ लाए एक सहाबी ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! इस कम्बल पर कुछ धब्बे हैं। आप (सल्ल०) ने उस कम्बल को हज़रत आइशा (रज़ि०) के पास भेज दिया। हज़रत आइशा (रज़ि०) ने कटोरे में पानी मँगवाया और अपने हाथ से उन धब्बों को साफ़ किया। फिर कम्बल को सुखाकर आप (सल्ल० की ख़िदमत में भेजा।

जब नबी (सल्ल०) एहराम बाँधते या एहराम खोलते थे तो हज़रत आइशा (रज़ि०) आप (सल्ल०) के मुबारक जिस्म पर ख़ुशबू लगाया करतीं थीं।

एक बार सफ़र में हज़रत आइशा (रज़ि०) का हार गुम हो गया। नबी (सल्ल०) ने उसे तलाश करने के लिए कुछ सहाबियों को भेजा। वे उसकी तलाश में निकले तो रास्ते में नमाज़ का वक्त हो गया। दूर-दूर तक कहीं पानी नहीं था, इसलिए बिना वुज़ू के नमाज़ पढ़ी। वापस आकर नबी (सल्ल० को सारी बात बताई। उस वक़्त तयम्मुम की आयत नाज़िल हुई। हज़रत उसैद-बिन-हुज़ैर (रज़ि०) ने उसे हज़रत आइशा (रज़ि०) की बहुत बड़ी फ़ज़ीलत (महानता) समझा और उनसे कहा, "उम्मुल-मोमिनीन अल्लाह आपको बेहतरीन बदला दे, आपके साथ जब भी कोई मुश्किल पेश आई अल्लाह ने उससे निकलने का रास्ता बता दिया, और यह चीज़ मुसलमानों के लिए बरकत बन गई।"

जब हज़रत आइशा (रज़ि०) की शादीशुदा ज़िन्दगी के नौ साल गुज़र गए तो नबी (सल्ल०) बहुत बीमार हो गए। आप (सल्ल०) तेरह (13) दिन बीमार रहे। इन तेरह दिनों में पाँच दिन दूसरी बीवियों के यहाँ और आठ दिन हज़रत आइशा (रज़ि०) के यहाँ गुज़रे। बीमारी के बढ़ जाने से ज

कमज़ोरी आई उसकी वजह से आप (सल्ल०) अपनी मिसवाक हज़रत आइशा (रज़ि०) को दे देते, वे उसे अपने दाँतों से चबाकर नर्म करतीं, फिर नबी (सल्ल०) उसे इस्तेमाल करते।

सन् 11 हिजरी, रबी-उल-अव्वल के महीने की 9वीं या 12वीं तारीख़ को नबी (सल्ल०) का इन्तिक़ाल हो गया। उस वक़्त आप (सल्ल०) का मुबारक सिर हज़रत आइशा (रज़ि०) की गोद में रखा हुआ था। उन ही का हुजरा (कोठरी) नबी (सल्ल०) की आख़िरी आरामगाह बना।

नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल के वक़्त हज़रत आइशा (रज़ि०) की उम्र बहुत ज़्यादा न थी। इसके बाद उन्होंने बेवगी (विधवा-काल) की ज़िन्दगी गुज़ारी। वे पूरे इस्लामी जगत् के लिए इल्म, भलाई, बरकत और रहनुमाई का स्रोत थीं। इनसे दो हज़ार दो सौ दस (2210) हदीसें रिवायत की गई हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि इस्लामी क़ानून का एक चौथाई हिस्सा हज़रत आइशा (रज़ि०) से हासिल हुआ।

हज़रत आइशा (रज़ि०) से मसाइल पूछने के लिए बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि०) तशरीफ़ लाते थे। हज़रत अबू-मूसा अशअरी (रज़ि०) फ़रमाते हैं, "हमारी हर मुश्किल का हल हज़रत आइशा (रज़ि०) जानती थीं। यानी हर मसले में नबी (सल्ल०) का तरीक़ा जानती थीं। हज़रत उरवा-बिन-ज़ुबैर (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने क़ुरआन, हदीस, फ़िक़ह, इतिहास और इल्मूल-इनसाब की जानकारी में हज़रत आइशा (रज़ि०) से बढ़कर किसी को नहीं देखा। अहनफ़-बिन-क़ैस (रज़ि०) और मूसा-बिन-तलहा (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने हज़रत आइशा (रज़ि०) से ज़्यादा सरल सुन्दर भाषा में बोलनेवाला किसी और को नहीं देखा।

हज़रत मुआविया (रज़ि०) फ़रमाते हैं, "लोगों को प्रभावित करनेवाली बेमिसाल तक़रीर करने में हज़रत आइशा (रज़ि०) का मुक़ाबला कोई नहीं कर सकता था।"

सीरत की किताबों में बहुत-सी रिवायतें मिलती हैं जिनसे साबित होता है कि हज़रत आइशा (रज़ि०) दीन (धर्म) के इल्म के साथ-साथ चिकित्सा, तारीख़ और शेर-शायरी में भी महारत रखती थीं।

हज़रत आइशा (रज़ि०) के इल्म और फ़ज़्ल को बयान करना कोई आसान नहीं। दीन की ख़िदमत और नबी (सल्ल०) की तालीम को फैलाने और दूसरों तक पहुँचाने का जो काम आप (रज़ि०) ने किया, उसे कोई और नहीं कर सका। अगर उन्हें "उम्मत की मुहसिन" कहा जाए तो ग़लत नहीं होगा।

कुछ ख़ास मामलों में हज़रत आइशा (रज़ि०) तमाम सहाबियों और सहाबियात में एक ख़ास मक़ाम रखती हैं। क़ासिम-बिन-मुहम्मद (रह०) रिवायत करते हैं कि हज़रत आइशा (रज़ि०) खुद फ़रमाती हैं कि दस ख़ूबियाँ मुझमें ऐसी हैं, जिनमें नबी (सल्ल०) की दूसरी बीवियों में कोई मेरी शरीक नहीं –

1) सिर्फ़ मेरा ही निकाह कुँआरे-पन में नबी (सल्ल०) के साथ हुआ।

2) जिबरील (अलैहि०) मेरी शक्ल में नबी (सल्ल०) से मिले और कहा कि हज़रत आइशा (रज़ि०) से शादी कर लीजिए।

3) अल्लाह ने मेरे लिए "आयते-बराअत' नाज़िल फ़रमाई।

4) मेरे माँ-बाप दोनों मुहाजिर हैं।

5) मैं नबी (सल्ल०) के सामने होती और आप (सल्ल०) नमाज़ पढ़ रहे होते थे।

6) मैं और नबी (सल्ल०) एक ही बरतन से ग़ुस्ल करते थे।

7) 'वह्य' के नाज़िल होते वक़्त सिर्फ़ मैं आप (सल्ल०) के पास होती थी।

8) मेरी बारी के दिन नबी (सल्ल०) ने इन्तिक़ाल फ़रमाया।

9) जब नबी (सल्ल०) का इन्तिक़ाल हुआ, आप (सल्ल०) का मुबारक सिर मेरी गोद में था।

10) मेरा ही हुजरा (कोठरी) नबी (सल्ल०) की आख़िरी आरामगाह बना।

हाफ़िज़-इब्ने-अब्दुल-बर्र (रह०) लिखते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया,

"आइशा (रज़ि०) को औरतों में ऐसी ही विशेषता (बड़ाई) हासिल है जैसे शोरबे में मिली रोटी को दूसरे पकवानों पर।"

हज़रत उमर (रज़ि०) की ख़िलफ़त के ज़माने में नबी (सल्ल०) की भी पाक बीवियों के लिए साल में दस-दस हज़ार दिरहम निर्धारित थे, किन हज़रत आइशा (रज़ि०) को बारह हज़ार दिरहम सालाना दिए जाते थे। सकी वजह हज़रत उमर (रज़ि०) यह बयान करते थे कि वे नबी (सल्ल०) ो बहुत प्रिय थीं।

जब मुसलमानों ने इराक़ पर विजय प्राप्त की तो ग़नीमत के माल में ोतियों की एक डिबिया भी हज़रत उमर (रज़ि०) को भेजी गई। उन्होंने ोगों से इजाज़त लेकर वह डिबिया हज़रत आइशा (रज़ि०) को भेज दी। से पाकर उम्मुल-मोमिनीन ने फ़रमाया, ऐ ख़ुदा, नबी (सल्ल०) के गुज़रने बाद उमर (रज़ि०) ने मुझपर बड़े एहसान किए हैं, अब मुझे उनके ाहफ़ों के लिए ज़िन्दा न रखना।"

हज़रत उमर (रज़ि०) के इन्तिक़ाल का वक्त क़रीब आया तो उन्होंने पने बेटे अब्दुल्लाह (रज़ि०) को उम्मुल-मोमिनीन के पास इस दरख़ास्त के ाथ भेजा कि उन्हें नबी (सल्ल०) के पहलू में दफ़न होने की इजाज़त दे ।

हज़रत आइशा (रज़ि०) ने फ़रमाया, "यह जगह मैंने अपने लिए रखी ा, लेकिन आज मैं इसे उमर (रज़ि०) के लिए छोड़ती हूँ।" यह हज़रत ाइशा (रज़ि०) का बेमिसाल त्याग ही था कि आज हज़रत उमर (रज़ि०)

नबी (सल्ल०) के पहलू में आराम फ़रमा रहे हैं। हज़रत उमर (रज़ि०) के बाद हज़रत उसमान (रज़ि०) ख़लीफ़ा हुए। इनकी ख़िलाफ़त के ज़माने में बड़े ख़तरनाक फ़ित्ने और षड्यंत्र रचे गए। जिनके नतीजे में हज़रत उसमान (रज़ि०) की शहादत की दर्दनाक घटना घटी तीन दिन के भूखे-प्यासे, कमज़ोर अमीरुल-मोमिनीन (हज़रत उसमान (रज़ि०) को ज़ालिमों ने बड़ी बे-दर्दी से उस वक़्त शहीद कर दिया, जबकि वे क़ुरआन मजीद की तिलावत कर रहे थे। इस घटना से हज़रत आइशा (रज़ि०) तड़प उठीं। चौथे ख़लीफ़ा हज़रत अली (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में कुछ सहाबियों के साथ मुसलमानों का एक गरोह हज़रत उसमान (रज़ि०) के क़िसास (हत्या-दण्ड) के लिए उठा। इस गरोह में हज़रत ज़ुबैर-बिन-अव्वाम (रज़ि०) और हज़रत तलहा (रज़ि०) जैसे बुलन्द मर्तबा सहाबी भी शामिल थे।

हज़रत आइशा (रज़ि०) को हज़रत उसमान (रज़ि०) की शहादत का बहुत दुख हुआ था। इसलिए वे भी नेकी और भलाई के ख़याल से इस गरोह में शामिल हो गईं। इस गरोह का ख़याल था कि हज़रत उसमान (रज़ि०) के कुछ हत्यारे अली (रज़ि०) की पनाह में हैं। हज़रत अली (रज़ि०) का कहना था कि जब तक पूरी जाँच-पड़ताल न हो जाए और हत्यारों का पता न चल जाए, किसी को दण्ड देना मुनासिब नहीं है। इसी मतभेद की वजह से जमल की लड़ाई की अफ़सोसनाक घटना पेश आई। हज़रत आइशा (रज़ि०) हालात को सुधारने के लिए अपने गरोह के साथ बसरा गईं। बदक़िस्मती से वहाँ हज़रत अली (रज़ि०) से लड़ाई छिड़ गई। इस लड़ाई में दोनों गरोहों की बहुत-सी क़ीमती जानें चली गईं। हज़रत अली (रज़ि०) का पलड़ा इस लड़ाई में भारी रहा। उन्होंने उम्मुल मोमिनीन को बड़ी इज़्ज़त व एहतिराम के साथ वापस भेज दिया। हज़रत आइशा (रज़ि०) को जब भी यह लड़ाई याद आती, वे फूट-फूटकर रोने लगतीं और फ़रमाया करतीं, "काश! मैं आज से बीस साल पहले गुज़र चुकी होती।"

हज़रत आइशा (रज़ि०) के शागिर्दों की संख्या लगभग दो सौ थी। उनमें क़ासिम-बिन-मुहम्मद (रह०), मसरुक ताबई (रह०), आइशा-बिन्ते-

ाहा (रज़ि०), अबू-सलमा (रह०) और उरवा-बिन-ज़ुबैर (रज़ि०) बहुत ाहूर हैं।

हज़रत आइशा (रज़ि०) जब कोई हदीस रिवायत करतीं तो अक्सर ाकी वजह भी बयान कर देतीं और जो वजह वे बयान करतीं उसके लिए ,त स्पष्टीकरण की ज़रूरत नहीं होती। उन्हें देखा-देखी किसी काम की ।ी पसन्द नहीं थी, वे हमेशा नबी (सल्ल०) की बात को समझने और ाकी गहराई तह पहुँचने की कोशिश करतीं। हदीस के विद्वानों ने ऐसी त-सी रिवायतें लिखी हैं, जिसमें हज़रत आइशा (रज़ि०) ने दूसरे सहाबियों मतभेद किया है।

इनमें से कुछ रिवायतें ये हैं :

हज़रत आइशा (रज़ि०) से किसी ने बयान किया कि अबू-हुरैरा (रज़ि०) ते हैं कि तीन चीज़ें मनहूस या अशुभ हैं, औरत, घर और घोड़ा। हज़रत इशा (रज़ि०) ने फ़रमाया, अबू-हुरैरा (रज़ि०) ने आधी बात सुनी। जब रत अबू-हुरैरा आए तो नबी (सल्ल०) आधी बात कह चुके थे।

नबी (सल्ल०) ने कहा था, "यहूदी कहतें कि तीन चीज़ें मनहूस (अशुभ) औरत, घर और घोड़ा।" जब अबू-हुरैरा (रज़ि०) आए तो नबी (रज़ि०) हूदी कहते है" के शब्द कह चुके थे और अबू-हुरैरा (रज़ि०) ने सिर्फ़ ा सुना "तीन चीज़ें मनहूस हैं– औरत, घर और घोड़ा।"

हज़रत उमर फ़ारुक़ (रज़ि०) से एक रिवायत मुर्दों के सुनने के बारे में के नबी (सल्ल०) ने उनके पूछे जाने पर जवाब दियाः

"वे तुम से ज्यादा सुनते हैं लेकिन जवाब नहीं दे सकतें।"

जब हज़रत आइशा ने इस रिवायत को सुना तो फ़रमाया उमर (रज़ि०) ुनने में ग़लती हुई है। नबी (सल्ल०) ने यह नहीं फ़रमाया था क्योंकि आन में इसके ख़िलाफ़ साफ़ बात मौजूद है।

"आप मुर्दों को नहीं सुना सकते" (क़ुरआन, 30: 22)

"और आप नहीं सुनानेवाले उनको जो क़ब्रों में हैं।"

(क़ुरआन, 35: 22)

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) और हज़रत अब्दुल्ला बिन-अब्बास (रज़ि०) रिवायत करते थे कि "घरवालों के रोने से मुर्दे अज़ाब होता है।"

जब हज़रत आइशा (रज़ि०) ने यह रिवायत सुनी तो इसे मानने इनकार कर दिया और फ़रमाया, "नबी (सल्ल०) एक यहूदी औरत जनाज़े के पास से गुज़रे। उसके सगे-सम्बन्धी रो रहे थे। नबी (सल्ल०) फ़रमाया, लोग रो रहे हैं और उसपर अज़ाब हो रहा है।" (यानी वह अप कर्मों की सज़ा भुगत रही है।) इसके बाद फ़रमाया कि क़ुरआन मजीद सा बयान करता है—

"कोई दूसरे के गुनाह का बोझ नहीं उठाता।"

(अल-अनआम : 164)

हज़रत अबू-सईद-ख़ुदरी (रज़ि०) बड़े मर्तबेवाले सहाबी थे, जब उन इन्तिक़ाल का वक़्त आया तो उन्होंने नए कपड़े पहने और फ़रमाया नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि मुसलमान जिस लिबास में मरेगा, उसी उठाया जाएगा। हज़रत आइशा (रज़ि०) ने सुना तो फ़रमाया, "अल्ल अबू-सईद (रज़ि०) पर रहम करे, लिबास से नबी (सल्ल०) का मतल इनसान के आमाल (कर्म) थे।"

हज़रत उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया अस्र की नमाज़ और फ़ज्र की नमाज़ के बाद कोई नमाज़ यानी नफ़्ल सुन्नत पढ़ना भी जाइज़ नहीं है। लेकिन इस मनाही की कोई वजह सम में नहीं आती। जब हज़रत आइशा (रज़ि०) ने यह रिवायत सुनी फ़रमाया, "उमर (रज़ि०) को भ्रम हुआ है, नबी (सल्ल०) ने सिर्फ़ इस त

ो नमाज़ से मना फ़रमाया है कि कोई शख़्स सूरज के निकलने या डूबने ो देखकर नमाज़ न पढ़े। (यानी सूरज की इबादत की शंका न रहे।)

हज़रत आइशा (रज़ि०) का अख़लाक़ बहुत बुलन्द था। ग़रीबों और रूरतमंदों का ख़याल रखतीं। मेहमानों की ख़ातिर करतीं और अल्लाह की ह में दिल खोल कर ख़र्च करती थीं। एक बार हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-बैर (रज़ि०) ने उनको एक लाख दिरहम भेजे। उन्होंने उसी वक़्त वे सारे रहम ज़रूरतमन्दों और ग़रीबों में बाँट दिए। उस दिन रोज़े से थीं। शाम ई तो ख़ादिमा ने कहा, "उम्मुल-मोमिनीन कितना अच्छा होता अगर आपने न दिरहमों से कुछ गोश्त इफ़्तार के लिए मँगा लिया होता।" फ़रमाया, तुमने याद दिलाया होता।"

हज़रत उरवा-बिन-ज़ुबैर (रज़ि०) कहते हैं कि एक बार हज़रत आइशा (रज़ि०) के पास सत्तर हज़ार की रक़म आई। उन्होंने उनके सामने ड़े-खड़े सारी दौलत अल्लाह की राह में दे दी और अपने दुपट्टे का पल्लू ाड़ दिया।

इमाम मालिक (रह०) बयान करते हैं कि हज़रत आइशा (रज़ि०) एक न रोज़े से थीं और घर में एक रोटी के सिवा कुछ न था। इतने में एक ाखारी ने आवाज़ दी। उम्मुल-मोमिनीन ने कनीज़ (दासी) को हुक्म दिया ; यह रोटी उसे दे दो। दासी ने कहा, "शाम को इफ़्तार किस चीज़ से ाजिएगा?" उन्होंने फ़रमाया, "यह तो उसको दे दो।" शाम हुई तो किसी बकरी का गोश्त तोहफ़े में भेज दिया। आप (रज़ि०) ने कनीज़ से रमाया, "देखो अल्लाह ने रोटी से अच्छी चीज़ भेज दी है।"

उम्मुल-मोनीन की फ़य्याज़ी (दानशीलता) की कोई सीमा न थी। हज़रत ब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर (रज़ि०) जो उनके भांजे और मुँह-बोले बेटे थे, हमेशा नकी ख़िदमत किया करते थे। ख़ाला की दानशीलता देखते-देखते एक बार भी घबरा गए और उनके मुँह से निकल गया, अब इनका हाथ रोकना हिए। हज़रत आइशा (रज़ि०) को पता चला तो बहुत नाराज़ हुईं और

क़सम खा ली कि अब इब्ने-ज़ुबैर से नहीं बोलूँगी। जब उन्होंने बातें ब कर दीं तो हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर (रज़ि०) बहुत परेशान हुए। हज़ मिसवर-बिन-मिख़रमा (रज़ि०) और अब्दुर्रहमान-बिन-असवद (रज़ि०) बीच में डालकर बड़ी मुश्किल से अपनी ग़लती माफ़ करवाई। हज़ आइशा (रज़ि०) ने अपनी क़सम तोड़ने के कफ़्फ़ारे में चालीस ग़ुल आज़ाद किए। उन्हें जब यह घटना याद आती तो रोते-रोते आँचल भ जाता। इब्ने-साद (रह०) ने बयान किया है कि हज़रत आइशा (रज़ि०) अपने रहने का मकान हज़रत मुआविआ (रज़ि०) के हाथ बेच दिया उ जो क़ीमत मिली वह सब अल्लाह की राह में दे दी।

उम्मुल-मोमिनीन के दिन-रात ज़्यादातर इबादत में या लोगों को मसा बताने में गुज़रते। उनके दिल में मुहब्बत, शफ़क़त और रहमदि कूट-कूटकर भरी थी। अपने दुश्मनों और मुख़ालिफ़ों (विरोधियों) तक माफ़ कर देती थीं।

मशहूर शायर और सहाबी हज़रत हस्सान-बिन-साबित (रज़ि०) इ की घटना में अफ़वाहों को सच मान बैठे थे और इसी ग़लत गुमान वजह से हज़रत आइशा (रज़ि०) पर इल्ज़ाम लगानेवालों में शामिल हो थे। हज़रत आइशा (रज़ि०) को उनके इस सुलूक की वजह से बहुत दु पहुँचा था, लेकिन इसके बावजूद उन्होंने हस्सान-बिन-साबित (रज़ि०) को म कर दिया था और उनकी बहुत इज़्ज़त करती थीं। हज़रत आइशा (रज़ि के कुछ रिश्तेदार हज़रत हस्सान (रज़ि०) को इफ़्क की घटना में शामि होने की वजह से बुरा-भला कहना चाहते थे, लेकिन हज़रत आइशा (रज़ि ने उन सबको सख़्ती से मना किया और फ़रमाया, "इन्हें बुरा न कहो, नबी (सल्ल०) की तरफ़ से मुशरिकों के शायरों को जवाब देते थे।"

मुआविया-बिन-ख़ुदैज ने हज़रत आइशा (रज़ि०) के भाई मुहम्मद-बि अबू-बक्र (रज़ि०) को क़त्ल कर दिया था, इसलिए वे उनसे नाराज़ थ लेकिन उन्होंने जब यह सुना कि मुआविया का सुलूक जिहाद के मैदान

अपने मातहतों से बहुत अच्छा होता है, किसी का जानवर मर जाए तो वे उसे अपना जानवर दे देते हैं, किसी का ग़ुलाम भाग ज़ाए तो अपना ग़ुलाम दे देते हैं और सब लोग उनसे ख़ुश हैं तो उम्मुल-मोमिनीन ने फ़रमाया, "जिस शख़्स में ये ख़ूबियाँ हों, मैं उससे इसलिए नाराज़ नहीं रह सकती कि वह मेरे भाई का क़ातिल है, मैंने नबी (सल्ल०) को यह दुआ माँगते हुए सुना है कि "ऐ अल्लाह, जो शख़्स मेरी उम्मत के साथ नर्मी करे, तू भी उसके साथ नर्मी कर और जो उसके साथ सख़्ती करे, तू भी उसके साथ सख़्ती कर।"

उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) को ग़ीबत (पीठ पीछे किसी की बुराई करना) और बदगोई (बुरी बातें कहना) से सख़्त नफ़रत थी। उन्होंने जो हदीसें रिवायत की हैं उनमें किसी शख़्स की ज़रा भी बुराई मौजूद नहीं है। उनका दिल इतना बड़ा था कि अपनी सौतनों की ख़ूबियाँ और तारीफ़ ख़ुशी से बयान करती थीं।

आप (रज़ि०) अल्लाह से बहुत डरनेवाली थीं। कभी इबरत की कोई बात याद आ जाती तो बे-इख़्तियार रोने लगतीं। एक बार फ़रमाया कि मैं जब कभी पेट भरकर खाना खाती हूँ, मुझे रोना आ जाता है। उनके एक शागिर्द ने पूछा कि ऐसा क्यों? फ़रमाया, "मुझे वह हालत याद आती है जिसमें नबी (सल्ल०) ने इस दुनिया को छोड़ा। ख़ुदा की क़सम! आप (सल्ल०) ने कभी पेट भरकर रोटी और गोश्त नहीं खाया।"

उम्मुल-मोमिनीन को अल्लाह की इबादत से बड़ा लगाव था। फ़र्ज़ नमाज़ों के अलावा सुन्नतों और नफ़्ल नमाज़ें भी ख़ूब पढ़ा करती थीं, तहज्जुद और चाश्त की नमाज़ सारी उम्र पाबन्दी से पढ़ी। हज भी पाबन्दी से अदा करतीं और रमज़ान के रोज़ों के अलावा नफ़्ल रोज़े भी अक्सर रखा करती थीं।

हज़रत आइशा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल सन् 58 हिजरी, रमज़ान के महीने में 67 साल की उम्र में हुआ। उन्हें आप (रज़ि०) की वसीयत के

मुताबिक़ रात में वित्र की नमाज़ के बाद बक़ीअ नामक क़ब्रिस्तान में दफ़
किया गया। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) ने जनाज़े की नमाज़ पढ़ाई। लोग
की ऐसी भीड़ उससे पहले कभी नहीं देखी गई थी। उनके इन्तिक़ाल
तमाम इस्लामी जगत् में रंज और ग़म की लहर दौड़ गई।

हज़रत आइशा (रज़ि०) की कोई औलाद नहीं हुई। उन्होंने अपने भां
अब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर (रज़ि०) के नाम पर अपनी कुन्नियत "उम्मे-अब्दुल्लाह
रखी थी।

हज़रत हफ़्सा-बिन्ते-उमर (रज़ि०)

नाम :- हफ़्सा, क़ुरैश के ख़ानदान 'अदी' से थीं।

नसब-नामा :- हफ़्सा-बिन्ते-उमर फ़ारूक़-बिन-ख़त्ताब-बिन-नुफ़ैल-बिन-अब्दुल-उज़्ज़ा-बिन-रबाह-बिन-अब्दुल्लाह-बिन-क़रत-ज़राह-बिन-अदी-बिन-कअब-बिन-लुय्य।

माँ हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-मज़ऊन (रज़ि०) थीं। वे बड़े मर्तबेवाली सहाबिया थीं। मशहूर सहाबी हज़रत उसमान-बिन-मज़ऊन (रज़ि०) हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) के मामू थे और इस्लामी क़ानून के मशहूर आलिम हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) उनके सगे भाई थे। हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की नुबूवत से पाँच साल पहले पैदा हुईं।

उनकी पहली शादी हज़रत ख़ुनैस-बिन-हुज़ाफ़ा-बिन-क़ैस-बिन-अदी (रज़ि०) से हुई। हज़रत ख़ुनैस (रज़ि०) बनू-सहम क़बीले से थे। इस्लाम के आरम्भ में ही ईमान ले आए, और उनके साथ हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) ने भी इस्लाम क़बूल कर लिया। हज़रत ख़ुनैस (रज़ि०) सन् 6 नबवी में हिजरत करके हबशा चले गए। नबी (सल्ल०) के मदीना हिजरत करने से कुछ पहले मक्का वापस आ गए और फिर हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) के साथ हिजरत करके मदीना तशरीफ़ ले गए।

हज़रत ख़ुनैस (रज़ि०) अल्लाह के दीन के एक जाँबाज़ सिपाही थे। सन् 2 हिजरी में बद्र की लड़ाई में बड़े जोश से हिस्सा लिया। सन् 3 हिजरी में उहुद की लड़ाई में बहादुरी के जौहर दिखाए और दुश्मनों से लड़ते हुए बुरी तरह ज़ख़्मी हो गए। उसी हालत में उन्हें मदीना ले जाया गया लेकिन इलाज के बावुजूद जान नहीं बच सकी और हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) बेवा हो गईं।

जब उनकी इद्दत (शौहर के इन्तिक़ाल के बाद चार महीने दस दिन के सोग की वह मुद्दत जिस में औरत न श्रृंगार कर सकती है और न दूसरा निकाह) पूरी हो गई तो हज़रत उमर (रज़ि०) को उनकी दूसरी शादी की फ़िक्र हुई। उसी ज़माने में, एक दिन नबी (सल्ल०) ने अकेले में हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) से हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) की चर्चा की। यह बात हज़रत उमर (रज़ि०) को नहीं मालूम थी। इसलिए उन्होंने हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) से दरख़ास्त की कि वे हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) से निकाह कर लें। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ख़ामोश रहे। हज़रत उमर (रज़ि०) को उनकी ख़ामोशी बहुत खली। फिर वे हज़रत उसमान (रज़ि०) के पास गए और अपनी बेटी हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) से शादी कर लेने की दरख़ास्त की। उसी ज़माने में नबी (सल्ल०) की बेटी हज़रत रुक़य्या (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हुआ था, जो हज़रत उसमान (रज़ि०) के निकाह में थीं। हज़रत उसमान (रज़ि०) ने फ़रमाया, "मैं अभी निकाह नहीं करना चाहता।" अब हज़रत उमर (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़िद्मत में हाज़िर हुए और सारी बातें बयान कीं। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हफ़्सा का निकाह ऐसे शख़्स से क्यों न हो जाए जो अबू-बक्र (रज़ि०) और उसमान (रज़ि०) दोनों से बेहतर है।"

एक रिवायत में है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हफ़्सा की शादी उस शख़्स से होगी जो उसमान से बेहतर है और उसमान का निकाह उससे होगा जो हफ़्सा से बेहतर है।"

इसके बाद नबी (सल्ल०) ने हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) से निकाह कर लिया और अपनी दूसरी बेटी हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि०) का निकाह उसमान (रज़ि०) से कर दिया।

सहीह बुख़ारी में है कि एक बार नबी (सल्ल०) हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-जहश (रज़ि०) के यहाँ देर तक रुके। हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में शहद पेश किया था, जिसे किसी ने उनके पास तोहफ़े में भेजा था। हज़रत आइशा (रज़ि०) को यह बात मालूम हुई

तो उन्हें रश्क हुआ। उनमें और हफ़्सा (रज़ि०) में बहनापा था। वे हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) के पास गईं, उन्हें सारी बात बताई और कहा कि जब नबी (सल्ल०) तुम्हारे पास तशरीफ़ लाए तो कहना कि ऐ अल्लाह के रसूल! क्या आपने मग़ाफ़ीर खाया है?

मग़ाफ़ीर एक फूल है, जिसे शहद की मक्खी चूस्ती हैं। उसकी महक अच्छी नहीं होती और नबी (सल्ल०) को उसकी महक से सख़्त नफ़रत थी। इसका मतलब यह था कि नबी (सल्ल०) ने जो शहद हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के यहाँ खाया है, उसकी वजह से आपके मुबारक मुँह से मग़ाफ़ीर की महक आती है। हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से यही बात कही। नबी (सल्ल०) को यह बात पसन्द नहीं आई कि आपके मुँह से मग़ाफ़िर की बू-आए, इसलिए फ़रमाया, "अब मैं कभी शहद नहीं खाऊँगा। इसपर आयते-तहरीम नाज़िल हुई–

"ऐ नबी तुम अपनी बीवियों की रज़ामन्दी के लिए, जो चीज़ ख़ुदा ने हलाल की है, उसे अपने ऊपर क्यों हराम करते हो।"

कुछ सीरत निगार सूरा तहरीम की इस आयत : "नबी ने एक बात अपनी एक बीवी से चुपके से कही थी। फिर जब उस बीवी ने (किसी और पर) वह राज़ (भेद) ज़ाहिर कर दिया–" की तफ़सीर यह बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) से कोई राज़ की बात कही और उन्होंने वह बात दूसरों को बता दी। क़ाज़ी सलमान मंसूरपुरी, अपनी किताब "रहमतुल-लिल-आलमीन" में लिखते हैं कि जब अल्लाह को अपने रसूल (सल्ल०) के घराने की इज़्ज़त का इतना ख़याल है कि किसी का नाम नहीं लिया तो इस बारे में ख़ामोशी इख़्तियार करनी ही बेहतर है। आर्थात् हमें भी यह नहीं कहना चाहिए हज़रत हफ़्सा ने नबी (सल्ल०) की कही हुई राज़ की बात दूसरे को बता दी थी।

बुख़ारी की एक रिवायत से मालूम होता है कि हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) के मिज़ाज में तेज़ी थी और वे कभी-कभी नबी (सल्ल०) को बराबरी से

जवाब दे देती थीं। उनके बाप हज़रत उमर (रज़ि०) को ख़बर हुई तो उन्होंने हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) से पूछा, "मैंने सुना है कि तुम नबी (सल्ल०) को बराबरी से जवाब देती हो?"

हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) ने जवाब दिया, "हाँ, मैं ऐसा करती हूँ।" हज़रत उमर (रज़ि०) ने फ़रमाया, "बेटी, मैं तुम्हें खुदा के अज़ाब से डराता हूँ, कि तुम ऐसा न करो!"

हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) से हर तरह के मसाइल पूछा करती थीं।

एक बार नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "वे लोग जो बद्र की लड़ाई और हुदैबिया कि संधि में शामिल थे, जहन्नम में नहीं जाएँगे।"

हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! अल्लाह तो फ़रमाता है, "तुममें से हर एक जहन्नम पर पहुँचेगा।" (क़ुरआन, 19 : 71)

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि हाँ, मगर यह भी तो है : "फिर हम परहेज़गारों को बचा लेंगे और ज़ालिमों को उसी में गिरा हुआ छोड़ देंगे।"

(क़ुरआन, 19: 72)

हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) अल्लाह से बहुत डरनेवाली थीं। अपना ज़्यादा वक्त अल्लाह की इबादत में गुज़ारती थीं। हाफ़िज़ इब्ने-अब्दुल-बर्र (रह०) हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) की शान में यह हदीस बयान करते हैं कि एक बार जिब्रील (अलैहि०) ने हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) के बारे में नबी (सल्ल०) से कहा, "वे बहुत इबादत करनेवाली, बहुत रोज़े रखनेवाली हैं। ऐ मुहम्मद (सल्ल०)! वे जन्नत में भी आपकी बीवी हैं।"

नबी (सल्ल०) ने हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) की तालीम का ख़ास इन्तिज़ाम किया था। हज़रत शिफ़ा-बिन्ते-अब्दुल्लाह (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) के हुक्म से उनको पढ़ना-लिखना सिखाया। इमाम अहमद (रह०) लिखते हैं कि शिफ़ा (रज़ि०) ने उनको चींटी (कीढ़े के) काटने का मंत्र भी सिखाया। कुछ सीरत-निगारों ने बयान किया है कि नबी (सल्ल०) ने क़ुरआन मजीद के

लिखे हुए तमाम हिस्सों को जमा करके हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) के पास रखवा दिया था। ये हिस्से नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल के बाद सारी ज़िन्दगी उनके पास रहे। यह बहुत बड़ा सम्मान था जो हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) को हासिल हुआ।

हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) दज्जाल के फ़ितने से बहुत डरती थीं। सहीह मुस्लिम की रिवायत में है कि मदीना में इब्ने-सय्याद नाम का एक शख़्स था। उसमें दज्जाल की कुछ निशानियाँ पाई जाती थीं। एक दिन रास्ते में वह हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) को मिल गया। उन्होंने उसकी कुछ करतूतों पर टोका और उसे बुरा कहा। इब्ने-सय्याद हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) का रास्ता रोककर खड़ा हो गया। उन्होंने उसकी पिटाई कर दी। हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) को ख़बर हुई तो भाई से कहने लगीं —

> "तुम उससे क्यों उलझते हो? क्या तुम्हें नहीं मालूम कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि दज्जाल के ज़ाहिर होने की वजह उसका ग़ुस्सा होगा।"

हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल सन् 45 हिजरी में मदीना में हुआ। जनाज़े की नमाज़ मदीना मरवान के गवर्नर ने पढ़ाई और कुछ दूर तक जनाज़े को कंधा भी दिया। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) जनाज़े को क़ब्र तक ले गए। उम्मुल-मोमिनीन हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) के भाई अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) और भतीजों ने उन्हें क़ब्र में उतारा।

इन्तिक़ाल से पहले हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) ने अपने भाई हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) को वसीयत की कि उनकी ग़ाबा की जायदाद सदक़ा करके वक़्फ़ कर दें।

नबी (सल्ल०) से उन्हें कोई औलाद नहीं हुई।

हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) इल्म व फ़ज़ल में बुलन्द दरजा रखती थीं। उनसे साठ हदीसें रिवायत की गई हैं। उनमें चार मुत्तफ़क़-अलैह हैं। छः सहीह मुस्लिम में और बाक़ी हदीस दूसरी किताबों में हैं।

हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-खुज़ैमा (रज़ि०)

नाम :- ज़ैनब

लक़ब :- उम्मुल-मसाकीन

नसब-नामा :- ज़ैनब-बिन्ते-खुज़ैमा-बिन-हारिस-बिन-अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-अब्दे-मुनाफ़-बिन-हिलाल-बिन-आमिर-बिन-सअसआ।

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) शुरू से ही दरिया दिल और खुले हाथ की थीं। ग़रीबों और ज़रूरतमंदों की मदद के लिए हमेशा तैयार रहतीं। भूखों को बड़ी उदारता से खाना खिलाती थीं। इन ख़ूबियों की वजह से लोगों में उम्मुल-मसाकीन के लक़ब से मशहूर थीं। इनकी पहली शादी नबी (सल्ल०) के फुफेरे भाई हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-जहश (रज़ि०) से हुई थी। वे बड़े बुलंद मर्तबा सहाबी थे। सन् 3 हिजरी में उहुद की लड़ाई हुई। इस लड़ाई से पहले हज़रत अब्दुल्लाह-बिन- जहश ने यह दुआ माँगी :

> "ऐ अल्लाह, मेरा मुक़ाबला आज ऐसे शख़्स से हो जो बहुत बहादुर और ख़तरनाक हो, मैं तेरी राह में लड़ता हुआ उसके हाथ से क़त्ल हो जाऊँ और वह मेरे होंठ, नाक और कान काट डाले, ताकि जब मैं तुझसे मिलूँ और तू पूछे कि ऐ अब्दुल्लाह तेरे होंठ, नाक और कान क्यों काटे गए? तो मैं कहूँ कि ऐ अल्लाह! तेरे लिए, तेरे रसूल के लिए।"

अल्लाह ने उनकी दुआ क़बूल फ़रमाई और उन्हें अपनी शहादत का यक़ीन हो गया, तो फ़रमाया –

> "खुदा की क़सम मैं दुश्मन से लड़ूँगा, यहाँ तक कि वह मुझे क़त्ल करके मेरी लाश को बिगाड़ देगा।"

चुनांचे उहुद की लड़ाई के मैदान में हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) इस जोश और बहादुरी से लड़े कि उनकी तलवार टुकड़े-टुकड़े हो गई। नबी (सल्ल०)

उन्हें खजूर की एक छड़ी दी जिससे उन्होंने तलवार का काम लिया और सी हालत में लड़ते-लड़ते अल्लाह की राह में शहीद हो गए। मुशरिकों ने नके होंठ, कान, नाक काटकर एक धागे में पिरोए और इस तरह उनकी मन्ना पूरी हो गई।

हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) की शहादत के बाद नबी (सल्ल०) ने उसी ाल हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-खुज़ैमा (रज़ि०) से निकाह कर लिया। महर बारह ौक़िया रखा गया। उस वक़्त ज़ैनब (रज़ि०) की उम्र लगभग तीस साल ी।

नबी (सल्ल०) से निकाह के दो या तीन महीने के बाद ही हज़रत नब-बिन्ते-खुज़ैमा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हो गया। नबी (सल्ल०) ने नाज़े की नमाज़ खुद पढ़ाई और जन्नतुल-बक़ी में दफ़न किया।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के बाद यह खुशनसीबी सिर्फ़ हज़रत नब (रज़ि०) को ही हासिल हुई कि नबी (सल्ल०) के हाथों इस दुनिया रुख़सत हुई। दूसरी सभी पाक बीवियों का इन्तिक़ाल नबी (सल्ल०) के द हुआ।

हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०)

नाम :- हिन्द

कुन्नियत :- उम्मे-सलमा, क़ुरैश के ख़ानदान मख़्ज़ूम से थीं।

नसब-नामा :- हिन्द-बिन्ते-अबू-मुगीरा-बिन-मुगैरा-अब्दुल्लाह-बिन-उमर-बिन मख़ज़ूम।

माँ का नाम आतिका-बिन्ते-आमिर था और वे फ़रास ख़ानदान सें थीं।

हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) के बाप अबू उमय्या एक दौलतमन्द आदमी थे और अपनी दानशीलता के लिए मशहूर थे। उनकी इस ख़ूबी की चर्चा चारों तरफ़ फैली हुई थी। बहुत-से लोगों के भरण-पोषण की ज़िम्मेदारी उन्होंने उठा रखी थी। अगर कभी सफ़र पर जाते तो सफ़र के तमाम साथियों के खाने-पीने और दूसरी ज़रूरतों को पूरा करना भी उनके ज़िम्मे होता। इस दरिया-दिली की वजह से उनका लक़ब 'ज़ादुर-राकिब' पड़ गया था। वे क़ुरैश के तमाम क़बीलों में बड़ी इज़्ज़त व एहतिराम की नज़र से देखे जातें थे।

हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) का पहला निकाह उनके चचेरे भाई अबू-सलमा-बिन-अब्दुल-असद (रज़ि०) से हुआ। वे नेक तबीअत के नौजवान थे। जब नबी (सल्ल०) ने लोगों को अल्लाह की बन्दगी की तरफ़ बुलाना शुरू किया तो वे इस दावत से प्रभावित हुए और अपने क़बीले के विरोध और दूसरी परेशानियों के बावुजूद उन्होंने तुरन्त इस्लाम क़बूल कर लिया। हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) भी उसी ज़माने में ईमान ले आईं। इस तरह ये दोनों मियाँ-बीवी उन बुलन्द और पाकीज़ा लोगों के गरोह में शामिल हो गए जिन्हें "साबिक़ूनल-अव्वलून (सर्वप्रथम इस्लाम क़बूल करनेवाले) बनने की ख़ुशनसीबी हासिल हुई। ये वे लोग थे जिन्होंने अल्लाह की राह में बड़ी मुसीबतें उठाईं लेकिन अपने क़दमों को लड़खड़ाने न दिया। जैसे-जैसे मुसलमानों की संख्या बढ़ती जाती थी, मुसलमानों के दुश्मन ज़ुल्म ढाने के

ए-नए तरीक़े निकालते जाते थे। जब उनका ज़ुल्म हद से बढ़ गया तो ३ी (सल्ल०) ने मुसलमानों को इजाज़त दे दी कि जो शख़्स अपनी जान ार दीन को बचाने के लिए हिजरत करना चाहे वह हबशा चला जाए। ह्ँ एक नेक बादशाह की हुकूमत है।

हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) और हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) दोनों उस त्त इस्लाम क़बूल कर चुके थे। कुछ रिवायतों के मुताबिक़ वे भी दूसरे ालमानों के साथ हबशा चले गए। कुछ दिन वहाँ गुज़ारने के बाद वापस गए और फिर मदीना की हिजरत का फ़ैसला किया। उस वक़्त हज़रत ामा (रज़ि०) के पास एक ही ऊँट था। उसपर उन्होंने हज़रत मे-सलमा (रज़ि०) और अपने नन्हे बच्चे सलमा को सवार कराया, ख़ुद ट की नकेल पकड़कर पैदल ही चल पड़े। अभी कुछ ही दूर गए थे कि मे-सलमा के ख़ानदान बनू-मुग़ीरा के लोगों को पता चल गया। उन्होंने ट को घेर लिया और अबू-सलमा (रज़ि०) से कहा, "तुम जा सकते हो, केन हमारी लड़की तुम्हारे साथ नहीं जाएगी।" यह कहकर उन्होंने ऊँट की ल हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) के हाथ से छीन ली और उम्मे-सलमा (रज़ि०) ज़बरदस्ती अपने साथ ले चले। तभी अबू-सलमा (रज़ि०) के नदानवाले आ पहुँचे। उन्होंने उम्मे-सलमा (रज़ि०) से बच्चे को छीन ा और बनू-मुग़ीरा से कहा "अगर तुम अपनी लड़की को अबू-सलमा के ा नहीं जाने देते तो हम भी अपने क़बीले के बच्चे को तुम्हारे पास नहीं ंगे।" फिर अबू-सलमा (रज़ि०) से कहा, "तुम अकेले जहाँ चाहो जा ते हो।"

उस वक़्त तक नबी (सल्ल०) ने मुसलमानों को मदीना हिजरत करने इजाज़त दे दी थी। हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) बीवी-बच्चे से बिछड़कर ले ही मदीना की तरफ़ चल पड़े। उम्मे-सलमा (रज़ि०) अपने ादानवालों के साथ और उनका बच्चा अबू-सलमा (रज़ि०) के ादानवालों के पास था। यानी दीन की राह में तीनों, बाप, बेटा और

बीवी जुदाई की मुसीबतें सह रहे थे। हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) को शौह और बेटे की जुदाई का बड़ा सदमा था। वे हर दिन सुबह घर से निकलत और सारा दिन एक टीले पर बैठकर रोती-सिसकती रहतीं। इस तरह ए साल गुज़र गया। एक दिन बनू-मुग़ीरा के एक इज़्ज़तदार और रहमदिल उन्हें इस हाल में देखा तो उसे बड़ा तरस आया। उसने अपने क़बीले लोगों को इकट्ठा किया और कहा, "यह लड़की हमारा ही ख़ून है, हम क तक इस मजबूर को उसके शौहर और बच्चे से जुदा रखेंगे। ऐ बनू-मुग़ीर ख़ुदा की क़सम, हमारा क़बीला बहादुर और शरीफ़ है, हम ज़ुल्म को पस नहीं करते।" उस नेक आदमी की बातें सुनकर दूसरों को भी तरस आ गया। उन्होंने उम्मे-सलमा (रज़ि०) को मदीना जाने की इजाज़त दे दी। ज बनू-अब्दुल-असद क़बीले के लोगों ने यह घटना सुनी तो उन्हें भी तरस आ गया और उन्होंने सलमा को उसकी माँ के पास भेज दिया। हज़र उम्मे-सलमा (रज़ि०) नन्हें बच्चे के साथ ऊँट पर सवार होकर मदीना क तरफ़ चल पड़ीं। रास्ते में तनईम नामी मक़ाम पर उन्हें एक शरीफ़ आद मिले। उनका नाम उसमान-बिन-तलहा- बिन-अबी-तलहा था। उन्होंने ज उम्मे-सलमा (रज़ि०) को एक नन्हें बच्चे के साथ अकेले सफ़र करते दे तो दिल में सोचा कि यह शराफ़त नहीं है कि क़ुरैश की एक ख़ातून अकेली सफ़र करे और मैं उसकी मदद न करूँ। उन्होंने उम्मे-सलमा (रज़ि के ऊँट की नकेल पकड़ी और बड़े एहतिराम से उन्हें लेकर मदीना की तर चल पड़े। जब कहीं पड़ाव होता, वे किसी पेड़ की ओट में हो जाते अ चलने के वक़्त ऊँट तैयार करके ले आते। इसी तरह चलते-चलते वे क़ु पहुँचे। अबू-सलमा (रज़ि०) यहीं रहते थे। उसमान-बिन-तलहा यहाँ मक्का वापस चले गए। हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) की मुलाक़ात अप बिछड़े शौहर से हुई। अपनी नेक बीवी और बच्चों को पाकर उन्हें अल्लाह का शुक्र अदा किया। हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) उसमान-बिन-तलहा की नेकी को हमेशा याद रखा। वे कहती थीं, "मै

समान-बिन-तलहा (रज़ि०) जैसा शरीफ़ और मददगार किसी और को नहीं ाया।"

सन् 3 हिजरी में हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) उहुद की लड़ाई में शरीक ए और बड़ी बहादुरी से लड़े। लड़ाई में उनका एक हाथ ज़हरीले तीर से ख़्मी हो गया। इलाज से ज़ख़्म ठीक हो गया, लेकिन कुछ ही महीनों बाद फ़र से उभर गया। फिर इसी तकलीफ़ से उनका इन्तिक़ाल हो गया। ज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) को उनकी मौत से बहुत सदमा पहुँचा। वे ार-बार कहती थीं, "या अल्लाह! परदेस में कैसी मौत आई है।"

नबी (सल्ल०) को हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल की ख़बर मली तो आप (सल्ल०) उनके घर तशरीफ़ ले गए और उम्मे-सलमा (रज़ि०) को ब्र की नसीहत की और फ़रमाया, "अबू-सलमा (रज़ि०) की मग़फ़िरत की आ माँगो।" इन्तिक़ाल के वक्त अबू-सलमा (रज़ि०) की आँखें खुली रह ई थीं, नबी (सल्ल०) ने ख़ुद अपने हाथ से उनकी आँखें बन्द कीं। उनके नाज़े की नमाज़ पढ़ते वक्त नबी (सल्ल०) ने नौ तकबीरें कहीं। लोगों ने छा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आपने नौ तकबीरें कैसे कहीं?" फ़रमाया, अबू-सलमा हज़ार तकबीरों के हक़दार थे।"

हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) बड़े ऊँचे मर्तबे के सहाबी थे। एक बार ज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) ने अबू-सलमा (रज़ि०) से कहा, "मैंने सुना है क अगर किसी औरत की ज़िन्दगी में उसके शौहर का इन्तिक़ाल हो जाए ौर वह औरत उसके बाद दूसरा निकाह न करे तो अल्लाह उसे भी जन्नत दाख़िल करता है, इसी तरह अगर किसी शख़्स की ज़िन्दगी में उसकी ीवी का इन्तिक़ाल हो जाए और वह मर्द उसके बाद दूसरा निकाह न करे ो अल्लाह उस शख़्स को भी जन्नत में जगह देता है। तो आइए हम दोनों ह प्रतिज्ञा कर लें कि हममें से जो पहले मरे दूसरा उसके बाद शादी न रे।

हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) ने फ़रमाया, "क्या तुम मेरी बात मानोगी?"

हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) ने जवाब दिया, "क्यों नहीं, इससे बढ़क मेरी ख़ुशनसीबी क्या हो सकती है!"

हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) ने फ़रमाया, "तो सुनो! अगर मैं पहले म जाऊँ तो तुम मेरे बाद ज़रूर निकाह कर लेना।"

फिर हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) ने दुआ माँगी : "ऐ अल्लाह, अगर मै उम्मे-सलमा से पहले मर जाऊँ तो इसे मुझसे बेहतर जानशीन दे।"

एक रिवायत में है कि जब नबी (सल्ल०) हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल पर ताज़ियत (पुरसे) के लिए तशरीफ़ ले गए तो आप (सल्ल०) ने भी हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) को नसीहत की, "ऐ उम्मे-सलमा! तुम अबू-सलमा (रज़ि०) के लिए दुआ करो और अल्लाह से दुआ करो कि वह तुम्हें अबू-सलमा (रज़ि०) से बेहतर जानशीन दे।"

हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) सोचती थीं कि अबू-सलमा (रज़ि०) से बेहतर कौन हो सकता है? फिर नबी (सल्ल०) ने उनसे निकाह किया।

इब्ने-साद (रज़ि०) बयान करते हैं कि हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के बाद हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) की मुसीबतों का ख़याल करके उन्हें निकाह का पैग़ाम भेजा, लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया।

नबी (सल्ल०) को हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) की मजबूरियों और परेशानियों का बहुत ख़याल था। हज़रत अबू-सलमा (रज़ि०) और हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) ने अल्लाह की राह में जो मुसीबतें उठाई थीं, नबी (सल्ल०) को उसका भी बहुत एहसास था। इसलिए आप (सल्ल०) ने हज़रत उमर (रज़ि०) के ज़रीए से उम्मे-सलमा (रज़ि०) को निकाह का पैग़ाम भेजा। हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) ने पैग़ाम क़बूल कर लिया। सन् 4 हिजरी, शव्वाल के महीने में उनका निकाह नबी (सल्ल०) से हुआ। निकाह के बाद वे ज़ैनब-बिन्ते-ख़ुज़ैमा (रज़ि०) के हुजरे में लाई गईं। हज़रत

नब-बिन्ते-ख़ुज़ैमा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल पहले ही हो चुका था। हज़रत म्मे-सलमा (रज़ि०) ने पहले ही दिन अपने हाथ से खाना तैयार किया। बी (सल्ल०) ने हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) को चमड़े का एक तकिया, ासमें खजूर की छाल भरी थी, दो मशकीज़े और दो चक्कियाँ दीं।

नबी (सल्ल०) से निकाह के बाद भी उन्होंने अपने पहले शौहर के च्चों की परवरिश बड़ी मुहब्बत और ध्यान से की। एक बार नबी (सल्ल०) पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मुझे इन बच्चों की परवरिश का बदला ल्लाह के यहाँ मिलेगा या नहीं?" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हाँ।"

हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) के एक ग़ुलाम थे, जिनका नाम सफ़ीना (रज़ि०) ा। उन्होंने सफ़ीना (रज़ि०) को इस शर्त पर आज़ाद कर दिया था कि वे ान्दगी भर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत करेंगे।

हज़रत अबू-लुबाबा अंसारी (रज़ि०) एक सीधे-सादे सहाबी थे। अहज़ाब ी लड़ाई के बाद नबी (सल्ल०) ने बनू क़ुरैज़ा के धोखेबाज़ और शरीर (दुष्ट) हूदियों से बात करने के लिए भेजा। बात-चीत के बीच उन्होंने असावधानी एक ऐसा संकेत दे दिया जिससे पता चलता था कि नबी (सल्ल०) का ादा यहूदियों को क़त्ल करने का है। बाद में हज़रत अबू-लूबाबा (रज़ि०) ा एहसास हुआ कि उन्होंने मुसलमानों का राज़ खोल दिया है। अब वे ुत पछताए। अपनी ग़लती के एहसास की वजह से उन्होंने अपने आप ा मस्जिदे-नब्वी के एक खम्भे से बाँध लिया और अल्लाह से तौबा, स्तग़फ़ार करने लगे।

कुछ दिनों के बाद नबी (सल्ल०) हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) के यहाँ ारीफ़ ले गए। जब आप (सल्ल०) सुबह को उठे तो मुबारक चेहरे पर ्कुराहट खेल रही थी। फ़रमाया, "आज अबू-लुबाबा (रज़ि०) की तौबा बूल हो ग़ई।"

हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) को भी बहुत खुशी हुई। कहा, "ऐ अल्ल के रसूल! अगर इजाज़त दें तो मैं अबू-लुबाबा को यह खुशख़बरी सुना दूँ।

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हाँ अगर तुम चाहो।" हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि ने अपने हुजरे (कोठरी) के दरवाज़े पर खड़े होकर पुकारा, "अबू-लुबाब तुम्हें मुबारक हो, तुम्हारी तौबा क़बूल हो गई।"

हज़रत अबू-लुबाबा (रज़ि०) ने अल्लाह का शुक्र अदा किया और सज में गिर पड़े। जल्द ही यह ख़बर आस-पास फैल गई और लोग हज़र अबू-लुबाबा (रज़ि०) को मुबारकबाद देने के लिए मस्जिदे-नब्वी में इकट् हो गए।

सन् 6 हिजरी में नबी (सल्ल०) ने हज के लिए मक्का जाने का इरा किया। आप (सल्ल०) के साथ जानेवाले सहाबियों की संख्या चौदह सौ थ क़ुरैश ने सुना तो उन्होंने मुसलमानों का रास्ता रोकने का फ़ैसला कर लिय नबी (सल्ल०) को जब क़ुरैश के इरादे की ख़बर मिली तो आप (सल्ल०) मक्का से कुछ मील की दूरी पर हुदैबिया नामी मक़ाम पर पड़ाव डाल फिर हज़रत उसमान (रज़ि०) के ज़रीए से क़ुरैश के पास यह पैग़ाम भे कि हमारा इरादा लड़ाई का नहीं, हम सिर्फ़ हज करना चाहते हैं। हज़ उसमान (रज़ि०) के जाने के बाद यह अफ़वाह फैल गई कि क़ुरैश ने उ क़त्ल कर दिया है। उस वक़्त नबी (सल्ल०) ने तमाम सहाबियों (रज़ि०) बैअत (प्रतिज्ञा) ली कि अगर क़ुरैश से उनके ज़ुल्म का बदला लेने के लि लड़ना पड़े तो ज़िन्दगी की आख़िरी साँस तक लड़ेंगे। यह बैअ 'बैअते-रिज़वान' के नाम से मशहूर है। इस बैअत की ख़बर क़ुरैश को मि तो वे डर गए और इन शर्तों पर मुसलमानों से सुलह (संधि) कर ली –

(1) दस साल तक सुलह (संधि) रहेगी। दोनों तरफ़ से किसी के आने-ज में रोक-टोक नहीं की जाएगी।

(2) अगले साल मुसलमानों को काबा के तवाफ़ (परिक्रमा) की इजाज़ होगी। लेकिन उस वक़्त उनके पास कोई हथियार नहीं होगा।

3) तमाम क़बीलों को इस बात की आज़ादी होगी कि वे चाहें तो क़ुरैश से मिल जाएँ या मुसलमानों का साथ दें। हलीफ़ (जिससे किसी प्रकार का समझौता हो) क़बीलों के भी यही अधिकार होंगे।

4) अगर क़ुरैश का कोई आदमी मुसलमान होकर नबी (सल्ल०) के पास चला जाए तो उसे क़ुरैश को वापस कर दिया जाएगा, लेकिन अगर कोई आदमी दीने-इस्लाम को छोड़कर क़ुरैश के पास चला जाए तो क़ुरैश उसे वापस नहीं करेंगे।

नबी (सल्ल०) ने अल्लाह के हुक्म के मुताबिक़ सभी शर्तें मंज़ूर कर ीं। लेकिन आम मुसलमान इन शर्तों से बहुत परेशान हुए, क्योंकि वे ामझते थे कि इन शर्तों में मुसलमानों का नुक्सान है।

नबी (सल्ल०) ने सुलह (संधि) के बाद मुसलमानों को हुक्म दिया कि । क़ुरबानी करें। इस सुलह से मुसलमानों के दिल ऐसे टूट गए थे कि वे ुरबानी के लिए तुरंत तैयार न हो सके। इससे नबी (सल्ल०) को तकलीफ़ ुहुँची और आप रंजीदा हुए। हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) आप (सल्ल०) के ााथ थीं। आप (सल्ल०) ने उनसे इस बात की चर्चा की तो उन्होंने ाशविरा दिया, "ऐ अल्लाह के रसूल! मुसलमानों ने आपका हुक्म अच्छी ारह नहीं समझा। आप बाहर निकलकर खुद क़ुरबानी करें और एहराम उतारने 5 लिए बाल मुंडवाएँ।" नबी (सल्ल०) ने हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) का ाशविरा क़बूल कर लिया। किसी से कुछ कहे बिना खुद क़ुरबानी की और ्हराम उतारा। जब सहाबियों (रज़ि०) ने देखा कि नबी (सल्ल०) क़ुरबानी कर रहे हैं, तो सबने तुरन्त क़ुरबानियाँ कीं और अपने सिर के बाल मुंडवा देए।

हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) को हदीस सुनने का बहुत शौक़ था। एक देन वे अपने बाल गुंधवा रही थीं कि नबी (सल्ल०) मिम्बर पर तशरीफ़ ााए और आप (सल्ल०) ने खुत्बा देना शुरू किया। अभी आप (सल्ल०) ने सेर्फ़ "ऐ इनसानो" ही कहा था कि हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) ने ख़ादिमा

को हुक्म दिया कि "बाल बाँध दो।" वे कहने लगीं, इतनी भी क्या जल है? अभी तो नबी (सल्ल०) ने सिर्फ़ इनसानों ही कहा है।" हज़ उम्मे-सलमा (रज़ि०) उठकर खड़ी हो गई, अपने बाल ख़ुद बाँधे और ग़ु से बोलीं, "क्या हम इनसानों में शामिल नहीं हैं?" इसके बाद बड़े ध्यान पूरा ख़ुत्बा सुना।

मुसनद अहमद (रह०) में है कि एक बार हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि ने नबी (सल्ल०) से कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! क़ुरआन में कहीं भी हमा (हम औरतों की) चर्चा नहीं है।" नबी (सल्ल०) उनकी बात सुनकर मिम्ब पर तशरीफ़ ले गए और ये आयत पढ़ी :

> "बेशक मुसलमान मर्द और मुसलमान औरतें, मोमिन मर्द और मोमिन औरतें ------------------------------ (क़ुरआन, 33:35)

अल्लामा इब्ने-साद (रह०) का बयान है कि जब सन् 11 हिजरी नबी (सल्ल०) बीमार हो गए तो हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) आप (सल्ल की ख़ैरियत मालूम करने हज़रत आइशा (रज़ि०) के हुजरे में जाती थीं एक दिन आप (सल्ल०) को बहुत बीमार देखा तो उनकी चीख़ निकल गई नबी (सल्ल०) ने चीख़ने से मना किया और फ़रमाया, "मुसीबत में चीख़न मुसलमानों के लिए मुनासिब नहीं।"

हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) बहुत परहेज़गारी की ज़िन्दगी गुज़ारती थीं इबादत से बड़ा लगाव था। रमज़ान के रोज़ों के अलावा हर महीने तीन रोज़ रखती थीं। लोगों को बुराइयों से रोकतीं और भलाई का हुक्म देती थीं।

एक बार एक हार पहन लिया जिसमें कुछ सोना मिला था। नबी (सल्ल० ने इसे नापसन्द किया तो उसे उतार दिया (या तोड़ डाला)।

मुसनद अहमद-बिन-हम्बल (रह०) में रिवायत है कि सन् 61 हिजरी जिस दिन हज़रत हुसैन (रज़ि०) अपने साथियों के साथ करबला में शहीद कि गए, उस दिन हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि०) ने ख़्वाब देखा कि नबी (सल्ल०

इस हाल में तशरीफ़ लाए हैं कि आप (सल्ल०) का मुबारक सिर और दाढ़ी के बाल धूल से अटे हुए हैं और आप (सल्ल०) बहुत ग़मगीन हैं।

हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) ने पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या हाल है।

फ़रमाया, "हुसैन (रज़ि०) की क़त्लगाह से आ रहा हूँ।"

हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) की आँख खुल गईं, वे रोने लगीं और बुलन्द आवाज़ से फ़रमाया, "इराक़ियों ने हुसैन (रज़ि०) को क़त्ल किया, ख़ुदा उन्हें क़त्ल करे! उन्होंने हुसैन (रज़ि०) को धोखा दिया, ख़ुदा उनपर लानत करे।"

हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) अपने बाप की तरह बहुत ही सख़ी थीं। दूसरों को भी ग़रीबों की मदद करने की नसीहत करती थीं। उनके घर से कोई माँगनेवाला ख़ाली हाथ नहीं जा सकता था, ज़्यादा नहीं तो थोड़ा ही, या जो कुछ होता, हाथ फैलानेवाले को दे देतीं। एक बार कुछ ज़रूरतमन्द, जिनमें कुछ औरतें भी शामिल थीं, उनके घर आए और बड़ी आजिज़ी (विनम्रता) से सवाल किया। उम्मुल-हसन (रज़ि०) भी वहाँ मौजूद थीं। उन्होंने उनको बुरा-भला कहा। हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) ने उन्हें रोका और फ़रमाया, "ऐसा करना हमारे लिए मुनासिब नहीं। फिर कनीज़ को हुक्म दिया कि इन्हें ख़ाली हाथ न जाने दो, और कुछ न हो तो इनके हाथ में एक-एक छुआरा ही रख दो।"

हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) से 378 हदीसें रिवायत की गई हैं। इल्म और फ़ज़्ल में हज़रत आइशा (रज़ि०) के बाद इनका ही दर्जा माना जाता है। क़ुरआन की तिलावत बहुत अच्छे तरीक़े से करती थीं। आप (रज़ि०) के क़ुरआन पढ़ने का तरीक़ नबी (सल्ल०) से मिलता था। अल्लाह ने उन्हें ख़ूबसूरती, इल्म, समझदारी और सही फ़ैसला करने की सलाहियत दी थी।

अल्लामा इब्ने-क़य्यिम (रह०) बयान करते हैं कि हज़रत उम्मे-सलमा के फ़तवों से एक छोटी किताब तैयार हो सकती है। उनके सभी फ़तवे मुत्तफ़क़ अलैह हैं।

हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल सन् 63 हिजरी में 84 साल की उम्र में हुआ। उनकी जनाज़े की नमाज़ हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) ने पढ़ाई।

नबी (सल्ल०) से इनकी कोई औलाद नहीं हुई। हज़रत अबू-सलमा (रज़ि० से इनके चार बच्चे (दो लड़के और दो लड़कियाँ) थे। उनके नाम :

(1) सलमा (रज़ि०) – ये हबशा में पैदा हुए। नबी (सल्ल०) ने हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की बेटी उमामा (रज़ि०) का निकाह इनसे किया।

(2) उमर (रज़ि०)– हज़रत अली (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में बहरैन और फ़ारस के हाकिम थे।

(3) ज़ैनब (रज़ि०)

(4) दुर्रा (दूसरी रिवायतों के मुताबिक़ रुक़य्या (रज़ि०))

हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-जहश (रज़ि०)

नाम :- ज़ैनब

कुन्नियत :- उम्मुल-हकम; इनका ताल्लुक़ क़ुरैश के ख़ानदान असद बिन-ख़ुज़ैमा से था।

नसब-नामा :- ज़ैनब-बिन्ते-जहश-बिन-रआब-बिन-यामर-बिन-सब्रा-बिन-मुर्रा-बिन-कसीर-बिन-ग़नम-बिन-दूदान-बिन-साद-बिन-ख़ुज़ैमा।

माँ का नाम उमैमा-बिन्ते-अब्दुल-मुत्तलिब था। वे नबी (सल्ल०) की फुफी थीं। इस तरह हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की फुफेरी बहन थीं।

हज़रत ज़ैनब उन ख़ुशनसीब लोगों में से थीं जिन्हें सबिक़ूनल-अव्वलून (सर्व प्रथम इस्लाम क़बूल करनेवाले) बनने का सौभाग्य मिला। उन्होंने सन् 13 नब्वी में अपने ख़नदानवालों के साथ हिजरत की और मदीना तशरीफ़ ले गईं।

हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के ग़ुलाम थे, जिन्हें आप (सल्ल०) ने आज़ाद कर दिया था। वे आप (सल्ल०) के मुँह-बोले बेटे भी थे। नबी (सल्ल०) उन्हें बहुत महबूब रख़ते थे इसी लिए आप (सल्ल०) ने हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) का निकाह हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि०) से कर दिया। अल्लामा इब्ने-साद (रह०) लिखते हैं कि हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) को यह रिश्ता पसन्द नहीं था और उन्होंने निकाह से पहले नबी (सल्ल०) से कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैं ज़ैद को अपने लिए पसन्द नहीं करती।"

लेकिन नबी (सल्ल०) इस निकाह में भलाई समझते थे इसलिए आपके हुक्म के मुताबिक़ हज़रत ज़ैद (रज़ि०) का निकाह हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) से हो गया। लेकिन दोनों में निबाह न हो सका। लगभग एक साल के बाद

ज़ैद (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से शिकायत की कि ऐ अल्लाह के रसूल ज़ैनब मुझसे बदज़बानी करती है और मैं उसे तलाक़ देना चाहता हूँ।"

नबी (सल्ल०) ने उन्हें समझाया, "तलाक़ न दो, अल्लाह इसे पसन्द नहीं करता।" सूरा अहज़ाब की इस आयत में इसी तरफ़ इशारा है :

> "और जबकि तुम उस शख़्स से जिसपर अल्लाह ने और तुमने एहसान किया, यह कहते थे कि अपनी बीवी को निकाह में रखो और ख़ुदा से डरो।" (क़ुरआन, 33:37)

फिर भी हज़रत ज़ैद (रज़ि०) और हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) में निबाह न हो सका और हज़रत ज़ैद (रज़ि०) ने हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) को तलाक़ दे दी।

जब हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की इद्दत (तलाक़ के बाद तीन महीने की मुद्दत जिसमें औरत दूसरा निकाह नहीं कर सकती) पूरी हो गई तो नबी (सल्ल०) ने ख़ुद निकाह करना चाहा। लेकिन अरब में उस वक़्त जाहिलीयत के रस्म व रिवाज चलते थे और लोग मुँह बोले बेटे को सगे बेटे के बराबर समझते थे। चूँकि हज़रत ज़ैद (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के मुँह बोले बेटे थे और लोगों में ज़ैद-बिन-मुहम्मद के नाम से मशहूर थे, इसलिए नबी (सल्ल०) को अंदेशा था कि लोग और ख़ास तौर पर मुनाफ़िक़ बातें बनाएँगे और एतिराज़ करेंगे। इसी वजह से आप (सल्ल०) हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) से निकाह करने में हिचक रहे थे। लेकिन अल्लाह का फ़ैसला था कि जाहिलीयत के रस्म व रिवाज मिटा दिए जाएँ। इसलिए यह आयत नाज़िल हुई :

> "तुम अपने दिल में वह बात छुपाते हो जिसको ख़ुदा ज़ाहिर कर देनेवाला है और लोगों से डरते हो, हालाँकि अल्लाह इसका ज़्यादा हक़दार है। (क़ुरआन, 33 : 37)

इसके बाद अल्लाह ने एतिराज़ करनेवालों को साफ़-साफ़ ख़बरदार केया :

"लोगो, मुहम्मद (सल्ल०) तुम्हारे मर्दों में से किसी के बाप नहीं हैं मगर अल्लाह के रसूल और आख़िरी नबी हैं।

(क़ुरआन, 33 : 40)

और यह हुक्म भी दिया गया :

"लोगों को उनके बाप के नाम से पुकारो।" (क़ुरआन, 33 : 5)

अब कोई रुकावट नहीं थी इसलिए नबी (सल्ल०) ने यह काम हज़रत द (रज़ि०) को ही सौंपा कि वे आप (सल्ल०) का पैग़ाम लेकर हज़रत नब (रज़ि०) के पास जाएँ। हज़रत ज़ैद (रज़ि०) हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के र गए और कहा :

"ज़ैनब, नबी (सल्ल०), तुमसे निकाह करना चाहते हैं।"

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) ने जवाब दिया कि "मैं अल्लाह से इस्तिख़ारा लाई की दुआ) करती हूँ। यह कहकर वे नमाज़ के लिए खड़ी हो गईं।

उसी वक़्त नबी (सल्ल०) पर यह आयत नाज़िल हुई :

"फिर जब ज़ैद उससे ज़रूरत पूरी कर चुका तो हमने उस (तलाक़ पाई हुई औरत) का निकाह तुमसे कर दिया।" (क़ुरआन, 33: 37)

यानी अल्लाह ने ख़ुद नबी (सल्ल०) का निकाह हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) कर दिया। इसके बाद नबी (सल्ल०) हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के मकान पर रीफ़ ले गए और बिना इजाज़त लिए अन्दर चले गए।

सुबह को वलीमा की दावत हुई, जिसमें रोटी और सालन का इन्तिज़ाम या गया। नबी (सल्ल०) ने हज़रत अनस (रज़ि०) को हुक्म दिया कि वे ों को बुला लाएँ। तीन सौ आदमी दावत में शरीक हुए। दस-दस की ड़ियों में आते और खाना खाकर चले जाते। इसी दावत में ऐसा हुआ

कि कुछ लोग खाना खाकर बातें करने लगे और उन्हें उठने का ख़याल ही न रहा। नबी (सल्ल०) बार-बार अन्दर आते और बाहर जाते। उसी मकान में हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) भी दीवार की तरफ़ मुँह फेरे बैठी थीं। इसी तरह बहुत देर हो गई और नबी (सल्ल०) को तकलीफ़ हुई तो अल्लाह ने आयते-हिजाब (परदे की आयत) नाज़िल की :

> "ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, नबी के घरों में बिना इजाज़त न चले आया करो, न खाने का वक़्त ताकते रहो। हाँ, अगर तुम्हें खाने पर बुलाया जाए तो ज़रूर आओ, फिर जब खा लो तो चले जाओ और बातों में न लग जाओ क्योंकि इस बात से नबी (सल्ल०) को तकलीफ़ होती है, वे तो लिहाज़ (शर्म) से कुछ नहीं कहते मगर अल्लाह को हक़ बात कहने में कोई शर्म नहीं, और जब तुम उनसे (नबी की पाक बीवियों से) कोई चीज़ माँगो तो पर्दे की ओट से माँगो।" (क़ुरआन, 33 :53)

इस आयत के नाज़िल होने के बाद नबी (सल्ल०) ने मकान के दरवाज़े पर परदा लटका दिया और लोगों का घर के अन्दर आना रोक दिया गया।

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) के निकाह में कई बातें ख़ास थीं –

1) जाहिलीयत की रस्म थी कि मुँह-बोला बेटा सगे बेटे के बराबर दर्जा रखता है, इस निकाह के ज़रीए से यह रस्म मिट गई।

2) लोगों को हुक्म दिया गया कि किसी को उसके अपने बाप के सिवा किसी दूसरे (मुँह बोले बाप) से मंसूब (सम्बद्ध) न करो।

3) अल्लाह ने हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) का निकाह "वह्य' के ज़रीए से किया।

4) वलीमे की शानदार दावत की गई। उस दावत में बकरी का गोश्त, रोटी और मलीदा था, जिसे उम्मे-सुलैम (रज़ि०) ने भेजा था। इस वलीमे में बहुत-से लोगों ने पेट भर कर खाना खाया।

5) इसी मौक़े पर आयते-हिजाब (परदे की आयत) नाज़िल हुई और पर्दे का रिवाज हुआ।

ये वे विशेषताएँ थीं जिनकी वजह से हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) को हज़रत आइशा (रज़ि०) से बराबरी का दावा था।

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) बहुत दीनदार, परहेज़गार, सच बोलनेवाली और अल्लाह की राह में दिल खोलकर ख़र्च करनेवाली थीं। इनकी इबादतगुज़ारी और परहेज़गारी की गवाही खुद नबी (सल्ल०) ने दी है। हाफ़िज़-इब्ने-हजर (रह०) बयान करते हैं कि एक बार नबी (सल्ल०) मुहाजिरों में ग़नीमत का माल बाँट रहे थे। हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) भी वहाँ मौजूद थीं। उन्होंने कोई ऐसी बात कही जो हज़रत उमर (रज़ि०) को सहन नहीं हुई। उन्होंने सख़्त अन्दाज़ में हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) को दख़ल देने से मना किया। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उमर, इनसे कुछ न कहो, ये बड़ी इबादतगुज़ार और अल्लाह से डरनेवाली हैं।"

हज़रत आइशा (रज़ि०) इनके सम्बन्ध में फ़रमाती हैं, "मैंने दीन के मामले में ज़ैनब से बेहतर कोई दूसरी औरत नहीं देखी।" इफ़्क की घटना में हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की सगी बहन हज़रत हुमना-बिन्ते-जहश (रज़ि०) भी ग़लत-फ़हमी का शिकार हो गई थीं, लेकिन जब नबी (सल्ल०) ने हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) से हज़रत आइशा (रज़ि०) के सम्बन्ध में पूछ-ताछ की तो उन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया, "मैंने आइशा में भलाई के सिवा और कुछ नहीं देखा।" इब्ने-साद (रह०) का बयान है कि एक बार नबी (सल्ल०) ने अपनी पाक बीवियों से कहा, "तुम सब में सबसे पहले वह मुझसे मिलेगी जिसका हाथ सब से ज़्यादा लम्बा होगा।"

लम्बे हाथ से नबी (सल्ल०) का मतलब दानशीलता थी। हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) बड़ी दानशील और अल्लाह की राह में ख़ूब ख़र्च करनेवाली थीं। नबी (सल्ल०) की यह पेशनगोई (भविष्यवाणी) उनपर पूरी हुई। नबी (सल्ल०) के बाद आप (सल्ल०) की पाक बीवियों में सबसे पहले उनका ही इन्तिक़ाल

हुआ। हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) खुद अपने हाथों से रोज़ी कमाती थीं। वे "दबाग़त' (चमड़ा रंगना) की कला जानती थीं, उससे जो आमदनी होती उसे अल्लाह की राह में ख़र्च कर देती थीं।

हज़रत उमर (रज़ि०) ने अपनी ख़िलाफ़त के ज़माने में हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) का वज़ीफ़ा बारह हज़ार दिरहम मुक़र्रर किया था। वे सारे दिरहम मिलते ही ग़रीबों और ज़रूरतमंदों में बाँट दिया करती थीं। एक बार जब यह वज़ीफ़ा उन्हें मिला तो उसे आपने रिश्तेदारों और यतीमों में बाँट दिया, फिर अल्लाह से दुआ की "अब यह दौलत मुझे न मिले क्योंकि यह 'फ़ित्ना' (आज़माईश) है।"

हज़रत उमर (रज़ि०) को पता चला तो उन्होंने फ़रमाया, "ज़ैनब अल्लाह की राह में बहुत ख़र्च करनेवाली हैं।"

फिर एक हज़ार दिरहम हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) की ख़िदमत में और भेजे। उन्हें भी तुरन्त ख़ैरात कर दिए। हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) का इन्तिक़ाल 53 साल की उम्र में सन 20 हिजरी में हुआ। उनके इन्तिक़ाल से ग़रीबों और बेसहारा लोगों को बहुत सदमा पहुँचा, क्योंकि वे उनकी हमदर्द और मददगार थीं। इन्तिक़ाल के वक़्त उनके पास सिर्फ़ मकान था। वही विरासत में छोड़ा, सब कुछ वे अपनी ज़िन्दगी में ही अल्लाह की राह में लुटा चुकी थीं। इन्तिक़ाल से कुछ पहले वसीयत की थी कि मुझे नबी (सल्ल०) के ताबूत पर उठाया जाए। उनकी यह वसीयत पूरी की गई। जिस दिन हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हुआ उस दिन बड़ी सख़्त गर्मी थी। हज़रत उमर (रज़ि०) ने क़ब्र की जगह ख़ेमा लगवा दिया।

जनाज़े की नमाज़ हज़रत उमर (रज़ि०) ने पढ़ाई। मुहम्मद-बिन-अब्दुल्ला-बिन-जहश (रज़ि०), उसामा-बिन-ज़ैद (रज़ि०), अब्दुल्लाह-बिन-अबी-अहमद (रज़ि०) और मुहम्मद-बिन-तलहा (रज़ि०) ने क़ब्र में उतरा।

इनके इन्तिक़ाल पर हज़रत आइशा (रज़ि०) ने फ़रमाया, “वह
ााल, नेक ख़ातून चली गई और यतीमों और बेवाओं को बेचैन कर
”

हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-जहश से ग्यारह हदीसें रिवायत की गई हैं। इनसे
गत करनेवालों में हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) और ज़ैनब-बिन्ते-अबू-
ा (रज़ि०) भी शामिल हैं।

हज़रत जुवैरिया-बिन्ते-हारिस (रज़ि०)

नाम :- बर्रा। खुज़ाआ क़बीले के मुस्तलिक़ ख़ानदान से थीं।

नसब-नामा :- बर्रा-बिन्ते-हारिस-बिन-अबी-ज़रार-बिन-हबीब-बिन-अ -बिन-मालिक-बिन-जुज़ैमा (मुस्तलिक़)।

हज़रत जुवैरिया का पहला निकाह उनके चचेरे भाई मुनाफ़-ि सफ़वान से हुआ। हज़रत जुवैरिया (रज़ि०) के बाप हारिस बनू-मुस्तलिक़ सरदार थे। उन्होंने क़ुरैश के इशारे पर अपने क़बीले को मदीने पर ह करने के लिए तैयार किया। नबी (सल्ल०) को ख़बर मिली तो (सल्ल०) 2 शाबान सन 5 हिजरी को मुजाहिदों के एक दल के साथ मद से बनू-मुस्तलिक़ की तरफ़ बढ़े। हारिस को मुसलमानों की पेश-क़दमी ख़बर मिली तो वे भाग गए। नबी (सल्ल०) ने मरीसीअ नामी जगह पड़ाव डाला। यहाँ के लोगों ने मुसलमानों का मुक़ाबला किया लेकिन वे गए। उनके गयारह आदमी मारे गए और लगभग छः सौ गिरफ्तार ि गए। गिरफ्तार होनेवालों में हज़रत जुवैरिया (रज़ि०) भी थीं। जब क़ैि का बँटवारा हुआ तो वे हज़रत साबित-बिन-क़ैस (रज़ि०) के हिस्से में अ चुँकि वे क़बीले के सरदार की बेटी थीं, लौंडी बन कर रहना गवारा नहीं पाई। हज़रत साबित (रज़ि०) से दरख़्वास्त की कि मुझसे कुछ रुपये ले छोड़ दें। वे तैयार हो गए और बदले में नौ औक़िया सोना माँगा।

अब हज़रत जुवैरिया (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर और कहा, "मुसीबत की मारी हूँ, आज़ाद होना चाहती हूँ, मेरी म कीजिए।" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "कैसा रहेगा अगर मैं तुम "ज़रे-मुकातबत" (आज़ादी हासिल करने के लिए जो माल चुकाना हो) कर दूँ और तुमसे निकाह कर लूँ?"

हज़रत जुवैरिया (रज़ि०) तुरन्त तैयार हो गईं। नबी (सल्ल०) ने उनका रे-मुकातबत चुका दिया और फिर उनसे निकाह कर लिया। फिर उनका इला नाम बर्रा बदल कर नया नाम जुवैरिया रख दिया।

जब इनका निकाह नबी (सल्ल०) से हो गया तो मुसलमानों ने ब्री (सल्ल०) की रिश्तेदारी का ख़याल करते हुए लड़ाई के तमाम क़ैदियों ो आज़ाद कर दिया। इब्ने-असीर (रह०) बयान करते हैं कि इस मौक़े पर नी-मुस्तलिक़ के सौ ख़ानदानों को आज़ादी मिली।

इस घटना के बारे में हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं, "मैंने वैरिया (रज़ि०) की तरह किसी औरत को अपने क़बीले के लिए रहमत नते नहीं देखा।"

इब्ने-असीर (रह०) बयान करते हैं कि जब हज़रत जुवैरिया (रज़ि०) के प को ख़बर मिली कि उनकी बेटी कनीज़ (दासी) बना ली गई है तो वे ों माल-दौलत ऊँटों पर लादकर बेटी को आज़ाद कराने के लिए मदीना ए। रास्ते में दो ऊँट जो उन्हें पसन्द थे, अक़ीक़ नामी जगह पर किसी टी में छिपा दिए। बाक़ी माल-दौलत और ऊँट लेकर मदीना पहुँचे, फिर ी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और कहा –

"आपने मेरी बेटी को क़ैद कर लिया है, यह तमाम माल व दौलत ले लें और उसे आज़ाद कर दें।"

नबी (सल्ल०) को ग़ैब से यह ख़बर मिल चुकी थी कि यह शख़्स दो ट छिपा आया है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "दो ऊँट जो तुम छिपा ए हो वे कहाँ हैं?"

हारिस यह सुनकर हैरान रह गए। उसी वक़्त कलिमा पढ़ा और ालमान हो गए। जब उन्हें बताया गया कि उनकी बेटी जुवैरिया (रज़ि०) ीज़ नहीं बनाई गई हैं बल्कि नबी (सल्ल०) ने उनसे निकाह कर लिया है बहुत ख़ुश हुए और बेटी से मिलकर ख़ुशी-ख़ुशी घर वापस गए।

एक और रिवायत के मुताबिक़ हारिस ने नबी (सल्ल०) से कहा, "मैं अरब का सरदार हूँ, मेरी बेटी लौंडी बनकर नहीं रह सकती। आप उसे अज़ाद कर दें।"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "बेहतर यह है कि मामला तुम्हारी बेटी की मरज़ी पर छोड़ दिया जाए।"

हारिस ने अपनी बेटी हज़रत जुवैरिया (रज़ि०) से कहा, "मुहम्मद ने मामला तेरी मरज़ी पर छोड़ दिया है, देख मेरी इज़्ज़त का ख़याल रखना।" उन्होंने कहा, "मैं अल्लाह के रसूल की ग़ुलामी को पसंद करती हूँ।" फिर नबी (सल्ल०) ने उनसे निकाह कर लिया।

इब्ने-साद (रह०) कहते हैं कि हारिस ने अपनी बेटी की आज़ादी की रक़म (फ़िदया) अदा कर दी और जब वे आज़ाद हो गईं तो नबी (सल्ल०) ने उनसे निकाह कर लिया।

हज़रत जुवैरिया (रज़ि०) को इबादत से बड़ा लगाव था। नबी (सल्ल०) घर तशरीफ़ लाते तो उन्हें अक्सर इबादत करते हुए पाते। एक दिन नबी (सल्ल०) ने उन्हें सुबह के वक्त मस्जिद में इबादत करते देखा दोपहर को फिर उधर से गुज़रे तो हज़रत जुवैरिया (रज़ि०) को उसी हालत में पाया। नबी (सल्ल०) ने उनसे पूछा, "क्या तुम हमेशा इसी तरह इबादत करती रहती हो?"

उन्होंने कहा, "बेशक ऐ अल्लाह के रसूल!"

नबी (सल्ल०) ने उन्हें ये कलिमात सिखाए और फ़रमाया कि इन्हें पढ़ा करो, ये तुम्हारी नफ्ल इबादतों से बढ़कर है —

सुब्हा-नल-लाहि-सुब्हा-नल-लाहि-अ-द-द-ख़ल-क़िही-सुहा-न-अ-द-द-ख़ल-क़िही-सुब्हा-नल-लाहि-रिज़ा-नफ़सिही-सुब्हा-नल-लाहि-रिज़ा-न फ़-सिही-सुब्हा-नल-लाहि-ज़ि-न-त-अर-शिही-सुब्हा-नल-लाहि-ज़ि-न-

त-अर-शिही-सुब्हा-नल-लाहि-मि-दा-द-कलि-मा-तिही-सुब्हानल-लाहि -मि-दा-द-कलि-मा-तिही।

हज़रत जुवैरिया (रज़ि०) बहुत स्वाभिमानी और ग़ैरतवाली थीं। इस लेए जब वे क़ैद कर ली गईं तो उन्होंने अपनी आज़ादी की पूरी कोशिश ी।

हज़रत जुवैरिया (रज़ि०) से कुछ हदीसें रिवायत की गई हैं। उनके ावियों में हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०), हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मर (रज़ि०) और हज़रत जाबिर (रज़ि०) जैसे बुलन्द मर्तबे के सहाबा ामिल हैं।

हज़रत उम्मे-हबीबा-बिन्ते-अबू-सुफ़यान (रज़ि०)

नाम :- रमला

कुन्नियतः- उम्मे-हबीबा

नसब-नामा :- उम्मे-हबीबा-बिन्ते-अबी-सुफ़यान-बिन-हरब-बिन-उमय्य बिन-अब्दे-शम्स।

माँ का नाम सफ़िया-बिन्ते-अबिल-आस था। वे हज़रत उसमान (रज़ि की फूफी थीं। हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) अमीर-मुआविया (रज़ि०) की स और हज़रत उसमान (रज़ि०) की फुफेरी बहन थीं। वे हज़रत मुहम्मद (सल्ल की नुबूवत से सतरह साल पहले मक्का में पैदा हुईं।

हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) का पहला निकाह उबैदुल्लाह-बिन-जहश हुआ। दोनों इस्लाम के शुरू ज़माने में ही ईमान ले आए। हज़र उम्मे-हबीबा (रज़ि०) के बाप उस वक़्त इस्लाम के कट्टर दुशमन थे औ उन्होंने मुसलमानों का जीना दूभर कर रखा था। नबी (सल्ल०) ने ज मुसलमानों को हबशा हिजरत करने की इजाज़त दी तो उबैदुल्लाह-बिन जहश और हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) भी दूसरे मुसलमानों के साथ हिजर करके हबशा चले गए। हबशा पहुँचने के बाद उबैदुल्लाह ने इस्लाम छो दिया और मुर्तद (विधर्मी) हो गए और ईसाई धर्म इख़्तियार कर लिया। शराब भी पीने लगे। हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) ने अपने शौहर को बहु समझाया कि वे अपनी आख़िरत न ख़राब करें, लेकिन उनपर कोई अस नहीं हुआ। खुदा ने उनके दिल पर मुहर लगा दी थी। इसी तरह ज़िन्दग गुज़ारते हुए उनका इन्तिक़ाल हो गया। उबैदुल्लाह से हज़रत उम्मे-हबीब (रज़ि०) की एक बेटी थीं जिनका नाम हबीबा (रज़ि०) था। ये सहाबिया में शामिल हुईं। इनके ही नाम पर हज़रत रमला की कुन्नियत उम्मे-हबीब (रज़ि०) मशहूर है।

उम्मे-हबीबा (रज़ि०) के परदेस में बेवा हो जाने की ख़बर नबी (सल्ल०) मिली। उनकी इद्दत पूरी होने के बाद नबी (सल्ल०) ने हज़रत -बिन-उमय्या ज़मरी (रज़ि०) को हबशा के बादशाह नज्जाशी के पास ा ताकि वे आप (सल्ल०) की तरफ़ से हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) को ाह का पैग़ाम दें। नज्जाशी ने अपनी एक कनीज़ से नबी (सल्ल०) के ाह का पैग़ाम हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) को भेजा। वे बहुत खुश हुईं कनीज़ को चाँदी के दो कंगन और अंगूठियाँ इनाम में दिए और हज़रत लेद-बिन-सईद-बिन-आस (रज़ि०) को अपना वकील बनाया। शाम के त नज्जाशी ने हज़रत जाफ़र-बिन-अबू-तालिब (रज़ि०) और दूसरे लमानों को बुलाकर खुद निकाह पढ़ाया। निकाह के बाद हज़रत लेद-बिन-सईद (रज़ि०) ने सारे मेहमान को खाना खिलाया। निकाह के ज़माने बाद सन् 6 हिजरी के आख़िर या 7 हिजरी के शुरू में हज़रत ा-हबीबा (रज़ि०) हबशा से मदीना आ गईं। नबी (सल्ल०) उन दिनों र की मुहिम पर तशरीफ़ ले गए थे।

हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) बहुत परहेज़गार और नेक ख़ातून थीं। इस्लाम के शुरू के ज़माने में ही ईमान ले आई थीं, जब कि उनके मक्का विजय होने तक न सिर्फ़ इस्लाम के कट्टर दुश्मन रहे बल्कि श के मुशरिकों की रहनुमाई भी करते रहे। हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) इस्लाम की ख़ातिर हबशा के लम्बे-सफ़र की परेशानियाँ और मुसीबतें ी से बर्दाशत कीं और कई साल परदेस में रहीं जबकि वे एक अमीर हैसियतवाले घराने की ख़ातून थीं।

मक्का विजय से पहले एक बार उनके बाप उनसे मिलने मदीना आए। के आने की एक वजह यह भी थी कि वे अपनी बेटी के ज़रीए से सुलह धि) की मुद्दत बढ़ाने की कोशिश करना चाहते थे। जब वे नबी (सल्ल०) बिस्तर पर बैठने लगे तो हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) ने बिस्तर पलट

दिया। अबू-सुफ़यान को यह बात अच्छी नहीं लगी। बोले, "तुम्हें इस बि पर अपने बाप का बैठना भी पसन्द नहीं।"

हज़रत उम्मे हबीबा (रज़ि०) ने जवाब दिया, "बेशक मुझे पसन्द कि नबी (सल्ल०) के मुबारक बिस्तर पर एक मुशरिक बैठे।" अबू-सुफ़ ख़ून के घूँट पीकर रह गए और सिर्फ़ इतना कहा, "तू मेरे पीछे बहुत बि गई।"

हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) बहुत ख़ूबसूरत थीं। सहीह मुस्लिम एक रिवायत से मालूम होता है कि अबू-सुफ़यान अपनी बेटी की ख़ूबसू पर गर्व किया करते थे।

मुसनद अहमद में है कि एक बार नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, शख़्स बारह रकअत नफ्ल नमाज़ पढ़ेगा उसके लिए जन्नत में एक बनाया जाएगा।" हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) सुन रही थीं। इसके सारी ज़िन्दगी बारह रकअत नफ्ल नमाज़ हर दिन पाबन्दी से पढ़ती रहीं।

जब उनके बाप अबू-सुफ़यान (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हुआ तो तीन के बाद ख़ुशबू मँगाकर लगाई और फ़रमाया, "नबी (सल्ल०) का हुक्म कि ईमान वाली औरत को किसी की मौत पर तीन दिन से ज़्यादा सोग करना चहिए, सिर्फ़ शौहर की मौत पर बीवी को चार महीने दस दिन र करना चाहिए।"

उम्मुल-मोमिनीन हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल 73 स की उम्र में सन 44 हिजरी में हुआ। उस वक़्त उनके भाई अमीर-मुआवि की हुकूमत थी।

इन्तिक़ाल से पहले हज़रत आइशा (रज़ि०) को बुलाया और कहा, " और आप के बीच सौकनों का रिश्ता था, अगर कोई ग़लती मुझसे हुई तो माफ़ कर दीजिए।"

हज़रत आइशा (रज़ि०) ने फ़रमाया, "मैंने माफ़ किया।" फिर उनके लिए दुआ माँगी। हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) ने फ़रमाया, "आपने मुझे खुश किया, खुदा आपको ख़ुश रखे।"

हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि०) से पैंसठ (65) हदीसें रिवायत की गई हैं। इनसे रिवायत करनेवालों में ऊँचे मर्तबे के कई सहाबा और ताबई शामिल हैं।

हज़रत सफ़िया-बिन्ते-हुय्य (रज़ि०)

नाम :- सफ़िया, हज़रत हारून (अलैहि०) की औलाद से थीं।

नसब-नामा :- सफ़िया-बिन्ते-हुय्य-बिन-अख़तब-बिन-सईद-बिन-आमिर-बिन-उबैद-बिन-ख़ज़रा-बिन-अबी-हबीब-बिन-नज़ीर-बिन-नहहाम-बिन-मैख़ूम।

माँ का नाम बर्रा (या ज़री) था। वे बनू-क़ुरैज़ा के मशहूर सरदार समुईल की बेटी थीं। ज़रक़ानी (रह०) बयान करते हैं कि हज़रत सफ़िया (रज़ि०) का असली नाम ज़ैनब था। अरब में ग़नीमत के माल का जो हिस्सा जीतनेवाले सरदार के हिस्से में आए उसे सफ़िया कहते हैं। चूँकि वे ख़ैबर की लड़ाई के बाद नबी (सल्ल०) के निकाह में आईं, इसलिए सफ़िया के नाम से मशहूर हुईं। लेकिन यह रिवायत मुअ़तबिर नहीं है। क्योंकि अरब में सफ़िया नाम की बहुत-सी औरतें थीं। खुद नबी (सल्ल०) की एक फूफी का नाम सफ़िया था।

हज़रत सफ़िया (रज़ि०) के बाप हुय्य-बिन-अख़तब यहूदियों के मशहूर क़बीला बनू-नज़ीर के सरदार थे। हुय्य को नबी की औलाद होने की वजह से अपनी क़ौम में बड़ी इज़्ज़त व एहतिराम की नज़रों से देखा जाता था।

चौदह साल की उमर में हज़रत सफ़िया (रज़ि०) की शादी एक मशहूर और नामवर बहादुर शख़्स सलाम-बिन-मशकम क़रज़ी से हुई, लेकिन दोनों मियाँ-बीवी में निभ न सकी और सलाम-बिन-मशकम ने उन्हें तलाक़ दे दी। इस तलाक़ के बाद हुय्य-बिन-अख़तब ने उनकी शादी बनू-क़ुरैज़ा के एक सरदार कनाना-बिन-अबिल-हक़ीक़ से कर दी। वह ख़ैबर के रईस अबू-राफ़े का भतीजा था और ख़ैबर के क़िले अल-क़मूस का हाकिम था।

सन् 7 हिजरी के शुरू में नबी (सल्ल०) ने यहूदियों की रोज़-रोज़ की शरारतों से निमटने के लिए उनके गढ़ ख़ैबर पर चढ़ाई की।

इस लड़ाई में 93 यहूदी मारे गए और 15 मुसलमान शहीद हुए। इस ाड़ाई में यहूदियों की बड़ी तबाही हुई। उनके कई मशहूर और बहादुर ारदार लड़ाई में मारे गए।

हज़रत सफ़िया (रज़ि०) के ख़ानदान के सारे लोग इस लड़ाई में मारे ाए या क़ैदी बना लिए गए। मरनेवालों में उनके बाप, भाई और शौहर भी ा। इस तरह वे बड़ी बेबसी की हालत में थीं

लड़ाई के बाद तमाम क़ैदी और माले-ग़नीमत एक जगह जमा किये ए। हज़रत बिलाल (रज़ि०) हज़रत सफ़िया (रज़ि०) और उनके रिश्ते की क बहन को पकड़ लाए। रास्ते में मरनेवाले यहूदियों की लाशें मिट्टी और ़ून में सनी पड़ी थीं। इनमें हज़रत सफ़िया (रज़ि०) के बाप, भाई और ाैहर की लाशें भी थीं और ख़ानदान के दूसरे लोग भी कटे पड़े थे। हज़रत फ़िया (रज़ि०) ने बड़ी हसरत से उन लाशों पर नज़र डाली और चुप की ़प रह गईं। लेकिन उनकी रिश्तेदार बहन दुख से बेक़ाबू हो गई और ज़ोर- ोर से रोने और सीना पीटने लगी। जब हज़रत बिलाल (रज़ि०) ने उन्हें बी (सल्ल०) की ख़िदमत में पेश किया तो आप (सल्ल०) उस औरत के ने से बहुत प्रभावित हुए।

हज़रत सफ़िया (रज़ि०) तो ख़ामोशी से एक तरफ़ बैठ गईं, उस औरत को बी (सल्ल०) ने दूसरी तरफ़ ले जाने का हुक्म दिया। फिर बिलाल (रज़ि०) फ़रमाया, "बिलाल, तुम्हारे दिल में रहम नहीं है कि इन औरतों को उस स्ते से लाए जहाँ उनके बाप और भाई मिट्टी और ख़ून में सने पड़े हैं।"

जब ग़नीमत का माल बाँटा जाने लगा तो हज़रत दहिया कलबी (रज़ि०) ने ज़रत सफ़िया (रज़ि०) को अपने लिए पसन्द फ़रमाया। हज़रत सफ़िया (रज़ि०) ड़ाई के क़ैदियों में सबसे ज़्यादा क़ाबिले-एहतिराम थीं, इसलिए कुछ हाबियों ने नबी (सल्ल०) से कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! सफ़िया नू-क़ुरैज़ा और बनू-नज़ीर के सरदारों के घर की ख़ातून है। ख़ानदानी राफ़त और शिष्टता इसके चेहरे से झलकती है, वह हमारे सरदार (प्यारे

नबी (सल्ल०)) के लिए मुनासिब है।" नबी (सल्ल०) ने यह मशविरा क़बूल क लिया। दहिया कलबी (रज़ि०) को दूसरी कनीज़ दे दी। हज़रत सफ़िया (रज़ि को आज़ाद कर दिया और उन्हें यह इख़्तियार दिया कि वे चाहे अपने घ चली जाएँ या पसन्द करें तो आप (सल्ल०) के निकाह में आ जाएँ।

हज़रत सफ़िया (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) के निकाह में आना पस किया और उनकी ख़्वाहिश के मुताबिक़ नबी (सल्ल०) ने उनसे निकाह क लिया। सहबा नामी जगह पर रस्मे-उरूसी अदा की गई और वहीं वलीमे क दावत हुई। सहबा से चलते वक़्त नबी (सल्ल०) ने उन्हें अपने ऊँट पर सव कराया और ख़ुद अपनी चादर से उनपर परदा किया। हज़रत सफ़िया (रज़ि की उम्र उस वक़्त सतरह (17) साल थी। इस निकाह के बाद यहूदियों फिर मुसलमानों से कोई लड़ाई नहीं की।

मदीना पहुँचकर नबी (सल्ल०) ने हज़रत सफ़िया (रज़ि०) व हारिस-बिन-नोमान अंसारी (रज़ि०) के मकान पर उतारा। उनकी ख़ूबसूरत की चर्चा सुनकर अंसार की औरतें और नबी (सल्ल०) की दूसरी पाव बीवियाँ उन्हें देखने आईं। जब देखकर वापस जाने लगीं तो नबी (सल्ल० उनके पीछे चले और हज़रत आइशा (रज़ि०) से पूछा, "आइशा तुमने उ कैसा पाया?"

हज़रत आइशा (रज़ि०) ने जवाब दिया, "यहूदिया है।"

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यह न कहो! वह मुसलमान हो गई है और उसका इस्लाम अच्छा और बेहतर है।"

हज़रत सफ़िया (रज़ि०) के चेहरे पर कुछ उभरे हुए निशान थे। नबी (सल्ल० ने उनसे पूछा, "ये कैसे निशान हैं?" हज़रत सफ़िया (रज़ि०) ने कहा, "मैंने एक रात ख़्वाब में देखा कि आसमान से चाँद टूटा और मेरी गोद में अ गिरा। मैंने यह ख़्वाब अपने बाप को सुनाया, जिसे सुनकर वह सख़्त गुस्से में भड़क उठा और इतनी ज़ोर से मेरे मुँह पर थप्पड़ मारा कि चेहरे प

सकी अँगुलियों के निशान उभर आए; फिर उसने कहा, "क्या तू अरब की लिका बनने के ख़्वाब देखती है।"

हज़रत सफ़िया (रज़ि०) नर्म-मिज़ाज, मिलनसार, दूसरों की मददगार ोर सब्र करनेवाली ख़ातून थीं। जब वे उम्मुल-मोमिनीन की हैसियत से दीना आईं और हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) उनसे मिलने आईं तो उन्होंने पने सोने के क़ीमती झुमके कानों से उतारकर हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) को दिए और उनके साथ आनेवाली औरतों को भी कोई-न-कोई ज़ेवर दिया।

नबी (सल्ल०) को वे बहुत महबूब थीं और आप (सल्ल०) उनका बहुत याल रखते थे। एक बार नबी (सल्ल०) की पाक बीवियाँ (रज़ि०) सफ़र आपके साथ थीं। इत्तिफ़ाक़ से हज़रत सफ़िया (रज़ि०) का ऊँट बीमार गया। वे बहुत उदास और परेशान हो गईं। नबी (सल्ल०) ने ख़ुद रीफ़ लाकर उन्हें तसल्ली दी और हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) से फ़रमाया, "ज़ैनब, ा सफ़िया को एक ऊँट दे दो।"

हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) यूँ तो बहुत खुले दिल की और दानशील थीं केन न जाने कैसे उनकी ज़बान से निकला, "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या इस यहूदिया को अपना ऊँट दे दूँ?"

यह बात नबी (सल्ल०) को पसन्द नहीं आई और आप (सल्ल०) ने तीन महीने तक हज़रत ज़ैनब (रज़ि०) से बात भी न की। फिर हज़रत इशा (रज़ि०) ने बड़ी मुश्किल से उनकी ग़लती माफ़ कराई। हज़रत ाब-बिन्ते-जहश (रज़ि०) बयान करती हैं, "नबी (सल्ल०) की नाराज़गी ने ा नाउम्मीद कर दिया था और मैंने यह प्रतिज्ञा की कि अब कभी ऐसी ा नहीं कहूँगी।"

इस्लाम क़बूल कर लेने के बाद अगर कोई हज़रत सफ़िया (रज़ि०) को दी कहता तो उनके दिल को बहुत तकलीफ़ पहुँचती थी, लेकिन वे बड़े

सब्र और सहनशीलता से काम लेतीं और कभी किसी को सख़्त जवाब नह देतीं।

एक बार नबी (सल्ल०) तशरीफ़ लाए तो हज़रत सफ़िया (रज़ि०) र रही थीं। आप (सल्ल०) ने वजह पूछी तो कहा, "आइशा और ज़ैनब कहत हैं कि हम नबी (सल्ल०) की तमाम बीवियों में सब से बेहतर हैं क्योंकि बीवी होने के साथ-साथ हम उनकी रिश्तेदार भी हैं, लेकिन तुम यहूदी हो।"

नबी (सल्ल०) ने हज़रत सफ़िया (रज़ि०) को तसल्ली देते हुए फ़रमाय "अगर आइशा और ज़ैनब कहती हैं कि नबी के ख़ानदान से उनका रिश्त है तो तुमने क्यों न कह दिया कि मेरे बाप हारून (अलैहि०), मेरे चच मूसा (अलैहि०) और मेरे शौहर मुहम्मद (सल्ल०) हैं।"

एक बार नबी (सल्ल०) किसी बात पर हज़रत सफ़िया (रज़ि०) र नाराज़ हो गए। हज़रत सफ़िया (रज़ि०) हज़रत आइशा (रज़ि०) के पास ग और कहा, "आप जानती हैं कि मैं अपनी बारी का दिन किसी चीज़ वे बदले में नहीं दे सकती, लेकिन मैं अपनी बारी का दिन आपको इस शत पर देती हूँ कि नबी (सल्ल०) को मुझ से राज़ी कर दें। हज़रत आइशा (रज़ि० तैयार हो गईं और ज़ाफ़रान (केसर) की रंगी हुइ एक ओढ़नी लेकर उसप पानी छिड़का ताकि उसकी ख़ुशबू से महक उठे। उसके बाद नबी (सल्ल० की ख़िदमत में तशरीफ़ ले गईं। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "आइशा, यह तुम्हारी बारी का दिन नहीं।" बोलीं, "यह ख़ुदा की मेहरबानी है जिसे चाहता है देता है।"

फिर पूरी घटना नबी (सल्ल०) को सुनाई और नबी (सल्ल०) हज़रत सफ़िया (रज़ि०) से राज़ी हो गए।

हज़रत सफ़िया (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) से बहुत मुहब्बत थी नबी (सल्ल०) के आख़िरी वक़्त में, जबकि आप (सल्ल०) बहुत बीमार थे सभी पाक बीवियाँ आप (सल्ल०) का हाल पूछने हज़रत आइशा (रज़ि०) के हुजरे (कोठरी) में आईं। हज़रत सफ़िया (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) को बेचैन

देखा तो कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! काश आपकी बीमारी मुझे हो जाती।" दूसरी बीवियों ने उनकी तरफ़ देखा तो नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ख़ुदा की क़सम, ये सच कह रही हैं।"

यानी वे जो कह रही हैं, वह दिखावा नहीं है, बल्कि वे सच्चे दिल से यही चाहती हैं।

हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि मैंने सफ़िया से अच्छा खाना पकानेवाली कोई औरत नहीं देखी।

हज़रत उमर (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में हज़रत सफ़िया (रज़ि०) की एक लौंडी ने अमीरुल-मोमिनीन से शिकायत की कि उम्मुल-मोमिनीन में अभी तक यहूदियत है क्योंकि वे अब भी "सब्त' (यानी शनिवार) को अच्छा समझती हैं और उन्हें यहूदियों से बड़ा लगाव है। हज़रत उमर (रज़ि०) सही बात जानने के लिए ख़ुद उम्मुल-मोमिनीन हज़रत सफ़िया (रज़ि०) के पास तशरीफ़ ले गए। उन्होंने जवाब दिया, "जब से ख़ुदा ने मुझे सब्त (शनिवार) के बदले जुमा दिया है तो सब्त को अच्छा समझने की ज़रूरत मुझे नहीं रही। यहूदियों से मुझे बेशक लगाव है। वे मेरे रिश्तेदार हैं और रिश्तेदारों से भलाई का मुझे ख़याल रखना पड़ता है।" हज़रत उमर (रज़ि०) उम्मुल-मोमिनीन के सच बोलने से बहुत ख़ुश हुए और वापस तशरीफ़ ले गए।

इसके बाद हज़रत सफ़िया (रज़ि०) ने लौंडी को बुलाकर पूछा, "तूने अमीरुल-मोमिनीन के पास मेरी शिकायत क्यों की?"

उसने कहा, "मुझे शैतान ने बहकाया था।"

उम्मुल-मोमिनीन ने फ़रमाया, "जा मैंने तुझे अल्लाह की राह में आज़ाद कर दिया।"

ज्ञान और प्रतिष्ठा में हज़रत सफ़िया (रज़ि०) का मर्तबा बड़ा बुलन्द था। कूफ़ा की औरतें उनके पास मसाइल पूछने आया करती थीं। जैनुल-

आबिदीन (रह०), इस्हाक़-बिन-अब्दुल्लाह (रह०), यज़ीद-बिन-मोतिब (रह०) और मुस्लिम-बिन-सफ़वान (रह०) ने कुछ हदीसें भी सफ़िया (रज़ि०) से रिवायत की हैं।

हज़रत सफ़िया (रज़ि०) दर्दमन्द दिल रखती थीं। सन् 35 हिजरी में जब तीसरे ख़लीफ़ा हज़रत उसमान (रज़ि०) के मकान को फ़सादियों ने घेर लिया तो उनको बहुत दुख हुआ। बूढ़े और कमज़ोर अमीरुल-मोमिनीन की मुसीबत ने उन्हें बेचैन कर दिया। उन्होंने एक ग़ुलाम को साथ लिया और अपने ख़च्चर (टट्टू) पर सवार होकर हज़रत उसमान (रज़ि०) के मकान की तरफ़ गईं। अशतर-नख़ई ने उनके ग़ुलाम को देखकर पहचान लिया और आगे बढ़कर ख़च्चर को मारने लगा। हालात काफ़ी बिगड़े हुए थे और अशतर-नख़ई से उलझने का कोई फ़ायदा नहीं था, इसलिए वापस चली गईं। फिर हज़रत हसन-बिन-अली (रज़ि०) के हाथ हज़रत उसमान (रज़ि०) को खाना भेजा।

हज़रत सफ़िया (रज़ि०) का इन्तिक़ाल सन् 50 हिजरी में रमज़ान के महीने में हुआ। उस वक्त उनकी उम्र साठ साल थी। उन्हें जन्नतुल-बक़ी में दफ़न किया गया।

उन्होंने अपना मकान अपनी ज़िन्दगी में ही अल्लाह की राह में दे दिया था। विरासत में एक लाख दिरहम नक़द छोड़े और उसके एक तिहाई की वसीयत अपने यहूदी भाँजे के लिए की। लोगों को उसका हिस्सा देने में संकोच हुआ। हज़रत आइशा (रज़ि०) ने सुना तो कहला भेजा, "लोगो, अल्लाह से डरो और सफ़िया की वसीयत पूरी करो।"

उनके हुक्म के मुताबिक़ वसीयत पूरी कर दी गई।

हज़रत मैमूना-बिन्ते-हारिस (रज़ि०)

नाम :- असली नाम बर्रा था। नबी (सल्ल०) के निकाह में आने के ः मैमूना नाम रखा गया। आप क़ैस-बिन-ऐलान क़बीले से थीं।

नसब-नामा :- मैमूना-बिन-हारिस-बिन-हुज़्न-बिन-बजीर-बिन-हज़्म-रौबा-ा-अब्दुल्लाह-बिन-हिलाल-बिन-आमिर-बिन-सअसआ-बिन-मुआविया-बिन-बक्र-ा-हवाज़िन-बिन-मनसूर-बिन-इक्रमा-बिन-ख़सीफ़ा-बिन-क़ैस-बिन-ऐलान-बिन-ज़र।

माँ का नाम हिन्द-बिन्ते-औफ़-बिन-ज़ुहैर-बिन-हारिस-बिन-हमाता-बिन-श था। वह हुमैर क़बीले से ताल्लुक़ रखती थीं।

उनका पहला निकाह मसऊद-बिन-अम्र-बिन-उमैर-सक़फ़ी से हुआ था।

उन्होंने किसी वजह से तलाक़ दे दी। फिर अबू रहम-बिन-अब्दुल-ा से शादी हुई। सन् 7 हिजरी में अबू-रहम का इन्तिक़ाल हो गया और ःत मैमूना बेवा हो गईं।

उसी साल नबी (सल्ल०) उमरा के लिए मदीना से मक्का गए तो ा (सल्ल०) के चचा हज़रत अब्बास-बिन-अब्दुल-मुत्तलिब (रज़ि०) ने ःत मैमूना (रज़ि०) से निकाह कर लेने की सलाह दी। नबी (सल्ल०) ा हो गए। एहराम की हालत में ही सन् 7 हिजरी शव्वाल के महीने मे ःत मैमूना (रज़ि०) का निकाह नबी (सल्ल०) से हुआ। महर पाँच सौ ःम रखा गया। उमरा कर लेने के बाद नबी (सल्ल०) ने मक्का से दस दूर सरफ़ नामी जगह पर क़ियाम किया। नबी (सल्ल०) के ग़ुलाम त अबू-राफ़े (रज़ि०) हज़रत मैमूना (रज़ि०) को लेकर वहीं आ गए औ जगह रस्मे-उरूसी अदा हुई। हज़रत मैमूना (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के

आख़िरी बीवी थीं। यानी इनसे निकाह के बाद नबी (सल्ल०) ने अपनी ज़िंदगी में फिर कोई और निकाह नहीं किया।

हज़रत मैमूना (रज़ि०) बहुत नेक और परहेज़गार थीं। हज़रत आइशा (रज़ि० फ़रमाती हैं, "मैमूना (रज़ि०) हममें सबसे ज़्यादा परहेज़गार और रिश्तेदारों का ख़याल रखनेवाली थीं।"

मदीना में एक बार एक औरत बहुत बीमार हो गई। उसने मन्नत मानी कि अगर अल्लाह ने मुझे सेहत दी तो मैं बैतुल-मक़दिस जाकर नमाज़ पढ़ूँगी। अल्लाह ने उसकी बीमारी दूर कर दी तो उसने अपनी मन्नत पूरी करने के लिए बैतुल-मक़दिस जाने का इरादा किया। सफ़र पर जाने से पहले हज़रत मैमूना (रज़ि०) से मिलने आई और सारा हाल सुनाया। हज़रत मैमूना (रज़ि०) ने उसे समझाया कि मस्जिदे-नब्वी में नमाज़ पढ़ने का सवाब दूसरी मस्जिदों में नमाज़ पढ़ने के सवाब से हज़ार गुना ज़्यादा है। तुम बैतुल-मक़दिस जाने की जगह मस्जिदे-नबवी में ही नमाज़ पढ़ लो। सवाब भी ज़्यादा होगा और मन्नत भी पूरी हो जाएगी। अल्लाह को मस्जिदे-नबवी बैतुल-मक़दिस से ज़्यादा पसन्द है।

एक दिन हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०) उनके पास इस हालत में आए कि सिर के बाल बिखरे हुए थे। पूछा, "बेटे, यूँ परेशान हाल क्यों हो?" हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) ने कहा, "मेरी बीवी अय्याम" (मासिक धर्म) की हालत में है, वही मेरे सिर में कंघा किया करती थी। अब इस हालत में मैंने उनसे यह काम लेना मुनासिब नहीं समझा।"

हज़रत मैमूना (रज़ि०) ने फ़रमाया, "बेटे, क्या कभी हाथ भी नापाक होते हैं? हम इसी हालत में होती थीं और नबी (सल्ल०) हमारी गोद में सिर रखकर लेटते थे और क़ुरआन पढ़ते थे। फिर हम इसी हालत में जाएनमाज़ उठा कर मस्जिद में रख आती थीं।"

एक और मौक़े पर उन्होंने इब्ने-अब्बास (रज़ि०) को सादा और साफ़
बान में समझाया कि औरतें इस हालत में हों तो उनके छूने से कोई चीज़
ापाक नहीं होती।

एक बार हज़रत मैमूना (रज़ि०) का एक क़रीबी रिश्तेदार उनके घर
ाया। उसके मुँह से शराब की बू आ रही थी। वे बहुत नाराज़ हुईं और
से सख़्ती से झिड़ककर कहा, "फिर कभी मेरे घर में क़दम न रखना।"

एक बार उन्होंने एक लौंडी को अल्लाह की राह में आज़ाद कर दिया।
बी (सल्ल०) को मालूम हुआ तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह
नको जज़ा (अच्छा बदला) दे।"

हज़रत मैमूना (रज़ि०) बहुत दानशील थीं। अल्लाह की राह में ख़ूब
र्च करती थीं। इसलिए कभी-कभी क़र्ज़ लेने की ज़रूरत भी पड़ जाती
। एक बार बहुत ज़्यादा रक़म क़र्ज़ ली। किसी ने पूछा, "उम्मुल-मोमिनीन
नी ज़्यादा रक़म वापस कैसे होगी?"

फ़रमाया, "मैंने नबी (सल्ल०) से सुना है कि जो शख़्स क़र्ज़ अदा करने
नीयत रखता है, अल्लाह उसका क़र्ज़ अदा करने की सूरत निकाल देता
"

हज़रत मैमूना (रज़ि०) का इन्तिक़ाल सन् 51 हिजरी में सरफ़ के
ाम पर (जहाँ उनकी रस्मे-उरूसी हुई थी) हुआ। जब जनाज़ा उठाया गया
हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०) ने फ़रमाया, "जनाज़े को ज़्यादा
कत न दो, ये नबी (सल्ल०) की शरीके-ज़िन्दगी थीं। अदब के साथ
हेस्ता-आहिस्ता चलो।"

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०) ने जनाज़े की नमाज़ पढ़ाई और
में उतारा।

हज़रत मैमूना (रज़ि०) से 46 और कुछ लोगों के मुताबिक़ 76 हदीसें
ायत की गई हैं।

इनसे रिवायत करनेवालों में हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि अब्दुल्लाह-बिन-शद्दाद (रह०), अब्दुर्रहमान-बिन-साइब (रह०) उबैदुल्लाह अ ख़ौलानी और अता-बिन-यसार (रह०) वग़ैरा शामिल हैं। हज़रत अब्बास (रजि की बीवी उम्मुल-फ़ज़ल (रज़ि०), हज़रत मैमूना (रज़ि०) की सगी बहन थ इस रिश्ते से अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०) उनके भांजे थे।

हज़रत रेहाना-बिन्ते-शमऊन (रज़ि०)

नाम :- रेहाना, यहूदियों के ख़ानदान बनू-कुरैज़ा से थीं।

नसब-नामा :- रेहाना-बिन्ते-शमऊन-बिन-ज़ैद-बिन-ख़नाफ़ा।

कुछ रिवायतों में उनके नसब का सिलसिला इस तरह है :- रेहाना-बिन्ते-ज़ैद-बिन-उमर-बिन-ख़नाफ़ा-बिन-शमऊन-बिन-ज़ैद, लेकिन सीरत निगारों में अक्सर पहलेवाले नसब के सिलसिले को दुरुस्त मानते हैं। हज़रत रेहाना (रज़ि०) के बाप का नाम शमऊन-बिन-ज़ैद है। हज़रत रेहाना (रज़ि०) सहाबियात में शामिल थीं और इनसे हदीसें भी रिवायत की गई हैं।

हज़रत रेहाना (रज़ि०) का निकाह बनू-कुरैज़ा के एक शख़्स "हकम' से हुआ। बनू-कुरैज़ा की लड़ाई के बाद जिन यहूदियों को क़त्ल किया गया, हकम भी उनमें शामिल था। हज़रत रेहाना (रज़ि०) यहूदियों की उन औरतों में थीं जिन्हें लड़ाई में मुसलमानों ने गिरफ़्तार किया। इब्ने-साद (रह०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने उनको हज़रत उम्मुल-मुंज़िर-बिन्ते-क़ैस (रज़ि०) के घर में रखा। उनके इस्लाम क़बूल करने के बारे में दो रिवायतें हैं। पहली रिवायत यह है कि नबी (सल्ल०) ने उनसे फ़रमाया कि तुम चाहो तो इस्लाम क़बूल कर लो या फिर अपने मज़हब (यहूदियत) पर क़ायम रहो। उन्होंने यहूदियत पर क़ायम रहना पसन्द किया। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, अगर तुम इस्लाम क़बूल कर लो तो मैं तुम्हें अपने पास रखूँगा। लेकिन वे अपनी बात पर अटल रहीं। नबी (सल्ल०) को इनके इस सुलूक से तकलीफ़ पहुँची और आप (सल्ल०) ने उन्हें उनके हाल पर छोड़ दिया।

एक दिन आप (सल्ल०) सहाबियों (रज़ि०) की एक मजलिस में तशरीफ़ रखते थे कि किसी शख़्स के पैरों की आहट सुनाई दी। नबी (सल्ल०)

के चेहरे पर ख़ुशी झलक उठी और आप (सल्ल०) ने सहाबियों (रज़ि०) ः फ़रमाया कि ये सअलबा-बिन-सअया (रज़ि०) हैं, वे रेहाना के इस्लाम व ख़ुशख़बरी ले कर आ रहे हैं। इब्ने-हिशाम ने लिखा है कि सअलबा (रज़ि० ने नबी (सल्ल०) के पास आकर आहिस्ता से रेहाना (रज़ि०) के इस्ला क़बूल करने की ख़ुशख़बरी सुनाई। नबी (सल्ल०) बहुत ख़ुश हुए औ सहाबियों (रज़ि०) से फ़रमाया कि सअलबा (रज़ि०) रेहाना (रज़ि०) वे इस्लाम की ख़ुशख़बरी लेकर आए हैं।

दूसरी रिवायत यह है कि हज़रत रेहाना (रज़ि०) बाँदी बन कर आईं तं नबी (सल्ल०) ने उनसे फ़रमाया, "अगर तुम अल्लाह और रसूल क इख़्तियार कर लो तो मैं तुम्हें अपने पास ही रख लूँगा।" उन्होंने कहा, "ं अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) को इख़्तियार करती हूँ।"

इस्लाम क़बूल करने के बाद हज़रत रेहाना (रज़ि०) नबी (सल्ल०) वे साथ रहीं। कुछ रिवायतों के मुताबिक़ आप (सल्ल०) ने उन्हें आज़ाद क दिया, फिर उनसे निकाह करके अपनी पाक बीवियों में शामिल कर लिया।

हज़रत रेहाना (रज़ि०) परदे में रहती थीं, उनकी भी बारी का दि मुक़र्रर था। नबी (सल्ल०) को उनसे बड़ी मुहब्बत थी। आप (सल्ल० उनकी हर ख़्वाहिश पूरी करते थे। वह दारे-क़ैस-बिन-फ़हद में रहती थीं बहुत ख़ूबसूरत थीं और उनके अख़लाक़ भी पाकीज़ा थे।

नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल से कुछ महीने (एक रिवायत के मुताबि दस महीने) पहले इनका इन्तिक़ाल हुआ और जन्नतुल-बक़ीअ़ में दफ़न क गईं।

हज़रत मारिया-क़िबतीया (रज़ि०)

सन् 6 हिजरी में हुदैबिया की सुलह (संधि) के बाद नबी (सल्ल०) ने स-पड़ोस के इलाक़ों के बादशाहों को ख़त लिखकर इस्लाम की दावत दी। ामें एक ख़त इस्कंदरिया के बादशाह (Patriarch) के नाम भी था, जिसे रब मुक़ौक़िस कहते थे।

मशहूर सहाबी हज़रत हातिब-बिन-अबी-बलतआ (रज़ि०) नबी (सल्ल०) ख़त लेकर मुक़ौक़िस के पास पहुँचे तो उसने इस्लाम तो क़बूल नहीं या, लेकिन हज़रत हातिब (रज़ि०) से बड़ी इज़्ज़त व एहतिराम से पेश या। जब वे इस्कंदरिया से चलने लगे तो दो क़िब्ती लड़कियाँ साथ कर कि उसकी तरफ़ से नबी (सल्ल०) को पेश की जाएँ। उसने एक ख़त नबी (सल्ल०) को लिखा कि मैं दो लड़कियाँ आपकी ख़िदमत में भेज हूँ, जो क़िब्तियों में बड़ा मर्तबा रखती हैं।

ये दो लड़कियाँ हज़रत मारिया (रज़ि०) और हज़रत सीरीन (रज़ि०) । मिस्र से मदीना आते हुए रास्ते में हज़रत हातिब (रज़ि०) ने उन्हें ाम की दावत दी जिसे उन्होंने क़बूल कर लिया। मदीना पहुँचकर हज़रत तेब (रज़ि०) ने उन्हें नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में पेश किया तो आप (सल्ल०) हज़रत सीरीन (रज़ि०) को हज़रत हस्सान-बिन-साबित (रज़ि०) को दे ा और हज़रत मारिया (रज़ि०) को अपने पास रखा। सन् 8 हिजरी में की कोख से नबी (सल्ल०) के बेटे इब्राहीम पैदा हुए, और सतरह या ारह महीने की उम्र में उनका इन्तिक़ाल हो गया। हज़रत मारिया (रज़ि०) ने बेटे के इन्तिक़ाल पर बेइख़्तियार रोने लगीं और नबी (सल्ल०) की ंखों में भी आँसू आ गए।

सीरत-निगारों का बयान है कि नबी (सल्ल०) का सुलूक हज़रत ाया (रज़ि०) से वैसा ही था जैसा आप (सल्ल०) की दूसरी पाक

बीवियों से। उन्हें भी परदे में रहने का हुक्म था। नबी (सल्ल०) फ़रमाय करते थे कि क़िब्तियों (मिस्र के ईसाइयों) के साथ भलाई का सुलूक करें इसलिए कि उनसे वादे और नसब दोनों का ताल्लुक़ है। उनसे नसब क ताल्लुक़ तो यह है कि हज़रत इस्माईल (अलैहि०) की माँ और मेरे बेटे इब्राहीम की माँ (मारिया) दोनों इसी क़ौम से हैं, और वादे का ताल्लुक़ यह है कि उनसे मुआहदा (एग्रीमेंट) हो चुका है।

अल्लाह ने हज़रत मारिया (रज़ि०) को अच्छी सूरत और पाकीज़ा तबीअत दी थी। उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं, "जितना रश्क मुझे मारिया पर आता है किसी दूसरे पर नहीं।" हाफ़िज़ इब्ने-कसीर बयान करते हैं, "हज़रत मारिया (रज़ि०) नेक और पाकीज़ा अख़्लाक़ की थीं।"

नबी (सल्ल०) के इन्तिक़ाल के बाद मुसलमानों के पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) और दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि०) ने भी हज़रत मारिया (रज़ि०) का एहतिराम व इकराम बाक़ी रखा।

हज़रत मारिया (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हज़रत उमर (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में सन् 16 हिजरी, मुहर्रम के महीने में हुआ। अमीरुल-मोमिनीन हज़रत उमर (रज़ि०) ने तमाम मदीनावालों को जमा किया और ख़ुद जनाज़े की नमाज़ पढ़ाई और जन्नतुल-बक़ी में दफ़न किया।

***